कुरुक्षेत्र

मार्च 1988

मूल्य : 2.00 रुपये

सामाजिक वानिकी पर विशेष सामग्री

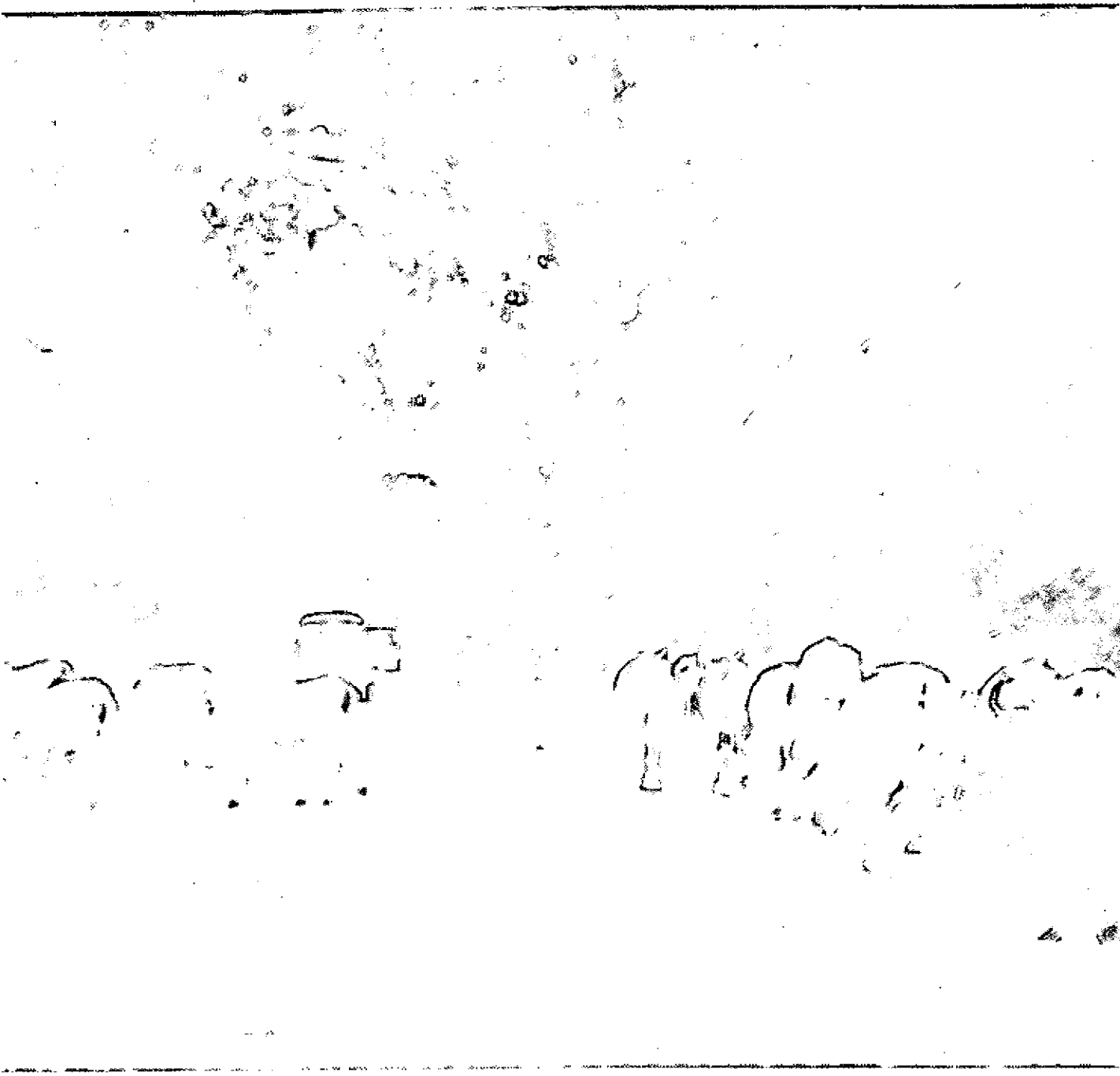

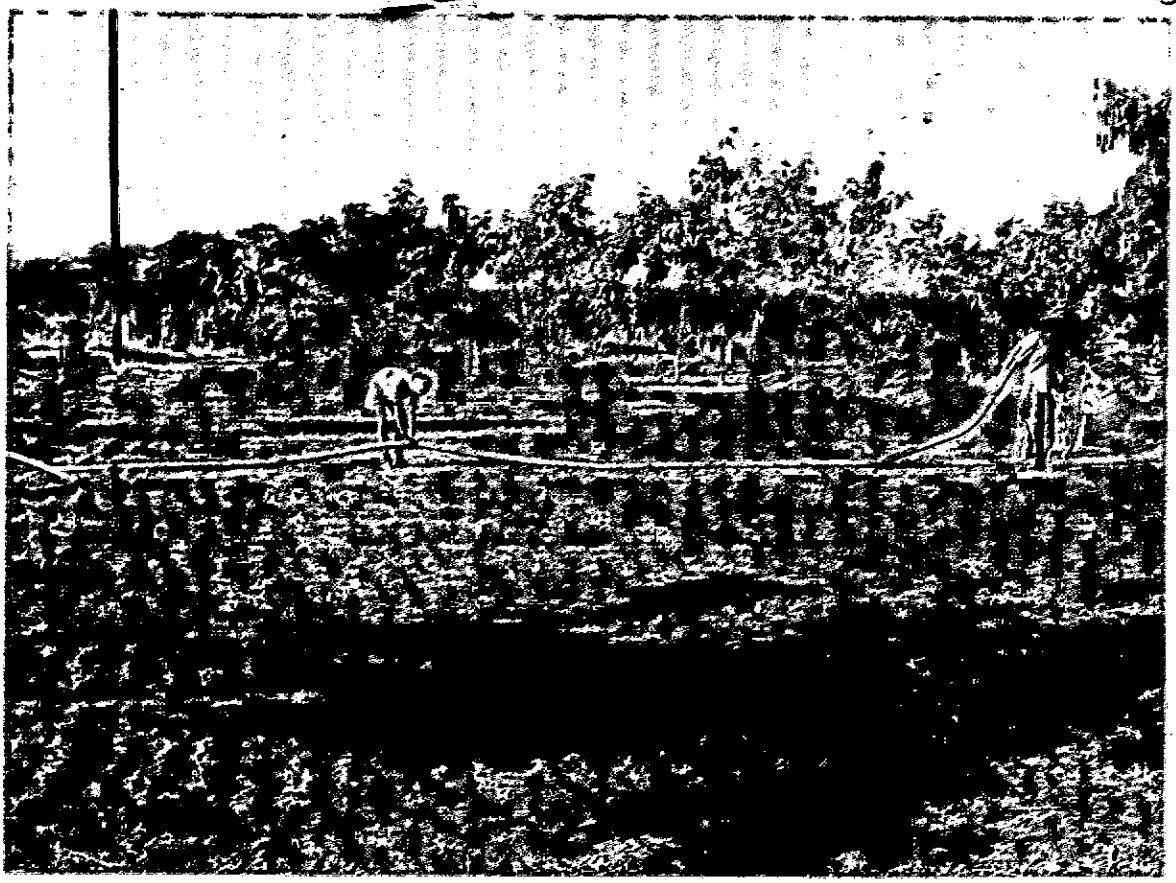

इंदौर में खंडवा क्षेत्र में पौधों की सिंचाई।
खंडवा में सामाजिक वानिकी नर्सरी

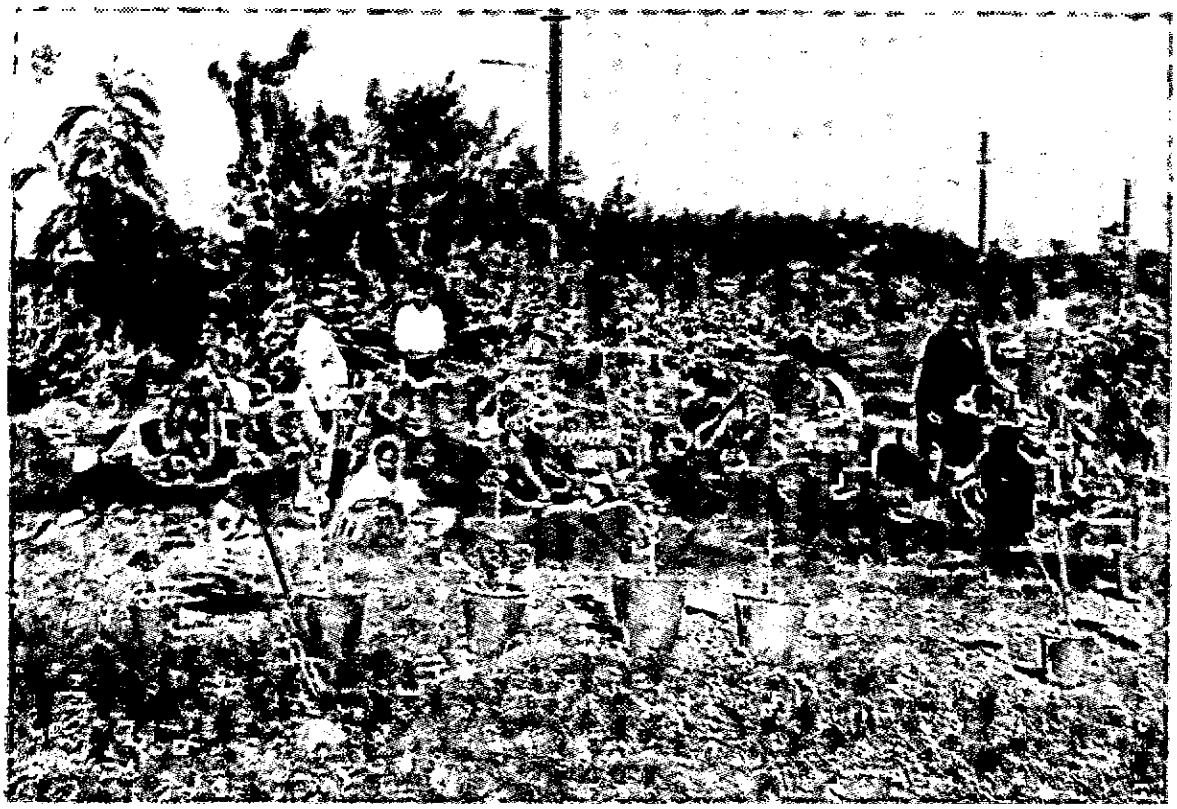

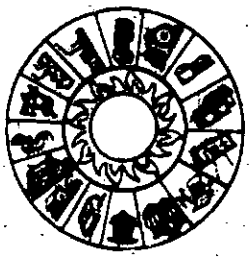

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

वर्ष-33 फाल्गुन-चैत्र शक 1909 अंक-5

कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिये।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

एक प्रति : 2.00 रु.

वार्षिक चन्दा : 20 रु.

सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

सहायक निदेशक : राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ : जीवन अडलजा

चित्र : फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

इस अंक में — **पृष्ठ संख्या**

महिलायें पिछड़ी क्यों हैं? 3
सरला गोपालन
सामाजिक वानिकी में क्रांति की आवश्यकता 7
नवीन चन्द्र जोशी
ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न स्तरों पर निगरानी 13
पी०डी० वशिष्ट
औद्योगिक विकास के लिए वन-संरक्षण और सामाजिक वानिकी की आवश्यकता 15
निर्मल गांगुली एवं बी०के०शर्मा
वानिकी कार्यों में महिलायें पुरुषों से कहीं अधिक आगे 19
स्वाति तिवारी
ग्रामीण विकास में कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्व 22
सचिन शर्मा
उपलब्धि 27
राजमणि पाण्डेय
ग्रामीण ऊर्जा-वृक्षारोपण 29
गंगाशरण सैनी
टीकमगढ़ जिले के कृषि क्षेत्र पर एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम 33
डा०हेमचंद जैन
हम किसान हैं 35
अहद प्रकाश
मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के बढ़ते चरण 36
डा० विनोद गुप्ता
बंजर भूमि खेती योग्य बनाये 38
हरिश्चन्द्र सिंह

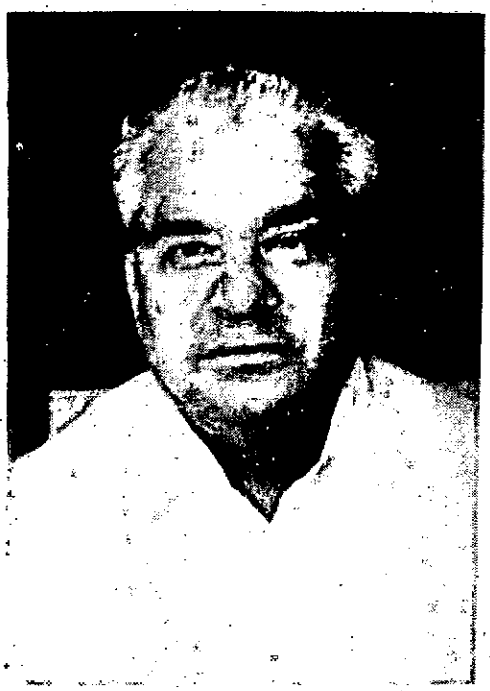

हमारे नये मंत्री

श्री भजनलाल, 14 फरवरी 1988 तक केन्द्रीय पर्यावरण और वन मंत्री थे, अब हमारे नये कृषि मंत्री हैं। उनकी नियुक्ति श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लों के स्थान पर हुई है, जिन्होंने 12 मई 1986 से इस मंत्रालय में कार्य किया था।

श्री भजनलाल ने अपना राजनैतिक जीवन सबसे निचले स्तर के गरीब लोगों की सेवा के साथ शुरू किया। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ में वे पंचायत समितियों और जिला परिषदों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे और ग्रामीण गरीब लोगों की सहायता के उद्देश्य से चलाये गये कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए वे उत्तरदायी थे।

श्री भजनलाल, जो स्वयं एक कृषक हैं, 6 वर्षों तक हरियाणा में कृषि, सहकारिता, पशुपालन, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, वन तथा वन्य जीवन विभागों के मंत्री पद पर रह चुके हैं।

उन्होंने व्यापक यात्राएं की हैं। वे ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा, जापान, दक्षिण कोरिया और जेद्दा की यात्रा कर चुके हैं।

जून 1979 से जून 1986 तक हरियाणा के मुख्य मंत्री पद पर रहते हुए उन्होंने राज्य में गरीबी हटाने से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाया। बाद में केन्द्रीय पर्यावरण तथा वन मंत्री के रूप में उन्होंने पर्यावरण की सुरक्षा तथा संरक्षण के लिए जनमत को जगाया। □

श्री जनार्दन पुजारी 14 फरवरी 1988 से इस विभाग में राज्य मंत्री नियुक्त किए गए हैं। श्री रामानन्द यादव के खान विभाग में नियुक्त होने पर उन्होंने ग्रामीण विकास विभाग में राज्य मंत्री का पदभार संभाला है।

व्यवसाय से विधिवेत्ता, श्री पुजारी मूल रूप से मंगलोर कर्नाटक के निवासी हैं। वे गरीबों और असहायों की मदद के लिए सदैव तत्पर रहे हैं। वित्त मंत्रालय में उप-मंत्री और बाद में राज्य मंत्री के रूप में उन्होंने गरीबों के हित में संस्थागत वित्त की कारगर व्यवस्था भी की थी। उन्हीं के माध्यम से निर्धनों के लाभ के लिए समाजकल्याण व सामाजिक सुरक्षा की कई योजनाओं की शुरुआत की गयी। □

कुरुक्षेत्र, मार्च 1988

महिलायें पिछड़ी क्यों हैं?

श्रीमती सरला गोपालन
संयुक्त सचिव, ग्रामीण विकास विभाग

मैं इस बहस में नहीं पड़ना चाहती कि महिलायें पुरुषों के बराबर हैं या नहीं लेकिन इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि कुछ क्षेत्रों में महिलाओं के पीछे रहने के कारण क्या हैं। महिलाओं का पिछड़ना एक दुष्चक्र का परिणाम है जिसमें वे जकड़ी हुई हैं। साक्षरता की कमी या अभाव और दक्षता की कमी के कारण इनके रोजगार के स्तर में और वेतन के स्तर में कमी बनी रहती है जिसके फलस्वरूप वे अक्सर, मामूली कामों अथवा बिना वेतन वाले कामों में फंसकर रह जाती हैं। परिणामस्वरूप, इनका आर्थिक दर्जा निचले स्तर पर ही रहता है जिसका इनके आम स्तर पर प्रभाव पड़ता है। महिलायें अधिक मेहनत वाले कामों जैसे चावल की बुआई, अनाज की सफाई व भंडारण, फल सब्जी तोड़ने, कपास के बीज चुनने जैसे श्रम-प्रधान कामों में पसीना बहाती रहती हैं। ये काम उबाऊ व थका देने वाले होते हैं और इनमें किसी समुचित टैक्नोलाजी का शायद ही कभी समावेश होता है।

उपलब्ध आंकड़ों से महिलाओं के निम्न स्तर का साफ पता चलता है। 63.23 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में केवल 38.74 प्रतिशत स्त्रियां ही मुख्य अथवा सीमांतक कामगार हैं। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार केवल 24.82 प्रतिशत स्त्रियां ही साक्षर हैं। संख्या के हिसाब से 1971 में 22 करोड़ महिलायें निरक्षर थीं। यह संख्या 1981 में बढ़कर 24 करोड़ 16 लाख हो गई। जहां कहीं लड़कियों को स्कूल जाने का अवसर मिलता भी है तो लड़कों की तुलना में इनके पढ़ाई छोड़ देने की दर संख्या बहुत अधिक होती है। इसके कुछ कारण ये हैं कि इन्हें घर पर भी काम करना पड़ता है, घर से स्कूल दूर पड़ता है, लड़कियां स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं और उन्हें पढ़ाने के लिए अध्यापिकाओं का अभाव है। वर्ष 1978 में आरंभ किये गए राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में स्त्रियों को विद्यार्थी, प्रशिक्षक तथा निर्णायक के रूप में लेने पर विशेष बल दिया गया था। लेकिन इसके अंतर्गत केवल 35 प्रतिशत स्त्रियां ही आईं। इसका कारण यह बताया गया कि गरीब महिलायें समय और उत्साह के अभाव के कारण इस कार्यक्रम के लिये आगे नहीं आयीं और फिर परिवार के पुरुष सदस्य भी महिलाओं, लड़कियों को शिक्षा दिलाने के हक में नहीं थे।

स्वास्थ्य देखभाल के मामले में बीस प्रतिशत से भी कम ग्रामीण व आदिवासी महिलाओं को गर्भाधान व मातृत्व के दौरान स्वास्थ्य जांच की सुविधा मिल पाती है। स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का लाभ न उठा पाने और अपर्याप्त प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के कारण आम तौर पर शिशु मृत्यु दर अधिक रहती है तथा स्त्रियों के निम्न सामाजिक स्तर के कारण यह दर अधिक हुई है।

महिलाओं को कम वेतन तथा अधिक मेहनत वाला काम मिलने का एक अन्य सबूत यह है कि उन्हें घर के काम के अलावा ईंधन के लिये लकड़ी एकत्र करने, खाना बनाने, बच्चों की देखभाल आदि में रोज 10 से बारह घंटे मेहनत करनी पड़ती है। इसके अलावा खेती के काम, पशुओं की देखभाल और अन्य कामों में महिलायें जो योगदान करती हैं, उनका आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता। जब बेहतर रोजगार के अवसर आते हैं तो वे शिक्षा दक्षता के अभाव में इसका लाभ नहीं उठा पातीं और नयी टैक्नोलाजी उन्हें काम से उखाड़ देती है क्योंकि उनके अकुशल श्रम की फिर आवश्यकता नहीं रहती।

इसलिये अब ऐसे कामगारों को तैयार करने की आवश्यकता है जो प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च क्षेत्र में समुचित प्रशिक्षण लेकर कर्मचारी, अधीक्षक तथा परिवर्तन लाने में सक्षम स्तर के बन सकें।

प्रशिक्षण ढांचा तैयार करना इस दिशा में सबसे पहला कदम है और प्रशिक्षण तकनीकें, प्रशिक्षकों का पता लगाना, प्रशिक्षण कार्यक्रमों का स्वरूप और उनकी सामग्री, उनके कामकाज व स्थल का निर्धारण होना आवश्यक है। महिलाओं के विकास के विशेष कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिये

उत्पादन मंडी, दक्षता प्रशिक्षण आदि में तालमेल कायम करना होगा।

मेरे ये विचार नये नहीं हैं। केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने गांवों के बच्चों और स्कूलों की देखभाल के लिए गांवों में ही अध्यापकों को तैयार करने के लिये शिक्षा के संक्षिप्त पाठ्यक्रम बनाये थे। यही अवधारणा स्वास्थ्य केंद्रों, बाल कल्याण केंद्रों, प्राथमिक/माध्यमिक स्कूलों और अन्य ग्राम-स्तर की सेवा इकाइयों को प्रभावी बनाना सुनिश्चत करने के लिए लागू करनी होगी।

विकास प्रक्रिया के दौरान परिवर्तन लाने में सरकार के अलावा अन्य एजेंसियों को भी भूमिका निभानी है। निम्न स्तर पर कार्यकुशलता को उच्च स्तर तक पहुंचाने के लिये ऐसा होने नितांत आवश्यक है।

पारम्परिक उद्योग क्षेत्र एक अन्य क्षेत्र है जिसमें इसे केवल मौजूद रहने के लिए भी व्यापार आकर्षण के लिए भी टैक्नोलाजी सम्बन्धी परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार के उद्योग हैं– हथकर्घा, खादी, रेशम के कीड़े पालना आदि। इन क्षेत्रों में व्यापार आदि के लिए कुशलता सुधार अभिकल्प परिवर्तन, टैक्नोलाजी सम्बन्धी परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है। पारम्परिक उद्योगों को गैर-पारम्परिक क्षेत्रों में स्थानान्तरित किए जाने की आवश्यकता है जिससे कि नए क्षेत्रों में नई कुशलताएं विकसित की जा सकें। इसलिए प्रशिक्षण के माध्यम से टैक्नोलाजी सम्बन्धी परिवर्तन करने और कुशलता विकसित करना नितांत महत्वपूर्ण हैं। इन मुद्दों में भी विशेषकर प्रौद्योगिकी की नई नीति अपनाने से निर्धनता निवारण कार्यक्रमों का गहरा सम्बंध है। इसके अलावा गरीबी कम करने के कार्यक्रमों के क्षेत्र में नवीन एवं आधुनिक औद्योगिक नीति विकसित करने पर बल देने की बहुत आवश्यकता है। इनमें इलैक्ट्रानिक्स, अन्य बिजली तथा रसायन उद्योग, छोटे-छोटे विनिर्माण कार्य शामिल हैं ताकि इनमें ग्रामीण लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकें।

देश भर में विभिन्न सेवाएं प्रदान करने के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पोषाहार कार्यक्रमों में प्रशिक्षित जन शक्ति की आवश्यकता है। प्राथमिक द्वितीय क्षेत्रों में विभिन्न गतिविधियां तथा प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए विस्तार, रखरखाव, मरम्मत आदि हेतु एक व्यापक आधार बनाने की आवश्यकता है। इसलिए तृतीय क्षेत्र का विशिष्ट एवं विशेष प्रशिक्षण से सुदृढ़ करने की जरूरत है। इसी उद्देश्य से सरकार के विभिन्न विभागों में सेवा कालीन एवं नई कुशलताएं विकसित करने के कार्यक्रम चलाए गए हैं। इसके बावजूद भी महिलाएं शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में पिछड़ रही हैं और इससे भी बड़ी बात यह कि उन्हें रोजगार के अवसर भी प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और बढ़ती जा रही है और रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। बेरोजगारी के पारिवारिक स्वरूप के विश्लेषण से इस बात का उत्तर मिल जाता है कि चुने लक्षित वर्गों में किसको प्राथमिकता होनी चाहिए।

अगर महिलाओं की प्रगति में तेजी लानी है और उनका स्तर ऊंचा उठाना है तो उन्हें विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण देने और दक्ष बनाने वाले कार्यक्रमों पर विशेष जोर देना होगा। ग्रामीण विकास में अब केवल कृषि ही रोजगार का एक मात्र साधन नहीं रहा। अब वहां उत्पादन तथा सेवा के क्षेत्र में अनेक सुविधायें तथा अवसर उपलब्ध होने लगे हैं। इनका लाभ उठाने के लिए स्त्रियों को प्रशिक्षित व दक्ष बनाना होगा।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम वर्ष 1983-84 में आरम्भ किया गया था। कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य ग्रामीण भूमिहीनों के लिए रोजगार के अवसरों का विस्तार करना है, ताकि प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन का रोजगार प्रदान किया जा सके। इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि एन.आर.ई.पी./आर.एल.ई.जी.पी. के मार्गदर्शी सिद्धान्तों में यह प्रावधान है कि उन परियोजनाओं को वरीयता दी जाए जो ग्रामीण निर्धन महिलाओं के लाभ के लिए हैं।

महिलाओं को ईंधन की लकड़ी तथा चारा रोपण कार्यक्रम में शामिल करना ग्रामीण विकास की नीति का एक अभिन्न अंग समझा गया, जो कि इस कार्यक्रम की उभरती हुई गतिविधियों में से एक है। ग्रामीण विकास विभाग द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का एक प्रमुख संघटक वृक्षारोपण कार्यक्रम है जिसमें सामाजिक वानिकी और चरागाह विकास शामिल है। इसके साथ ही इसमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.), सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.) और मरुभूमि विकास कार्यक्रम शामिल हैं।

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाओं के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की ओर बहुत सीमित ध्यान दिया गया है। यह इसलिए हुआ है कि महिलाओं की भूमिका को एक "गृह स्वामिनी" तक ही सीमित रखा गया है। इसके परिणामस्वरूप महिलाएं प्रौद्योगिकी सुधार में मूक दर्शक मात्र रह गई हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने छठी योजना में "महिलाओं के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी' नामक एक योजना शुरू की थी। इस योजना में इस बात को माना गया है कि महिलाओं के जीवन-स्तर को सुधारने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने की नितांत आवश्यकता है। नवीन प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत महिला उद्यमियों को विशेषज्ञ और संसाधन प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान और विकास निगम (एन.आर.डी.सी.) द्वारा देश भर में चुने स्थानीय स्थलों पर बड़ी संख्या में प्रौद्योगिकी प्रदर्शन और प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए गए।

छठी योजना के दौरान आरम्भ की गई "महिलाओं के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी" योजना के अन्तर्गत कई गतिविधियां शुरू की गईं। धुआंरहित चूल्हों के विकास और कुकर के प्रयोग, गोबर गैस संयन्त्रों और पानी को शुद्ध करने की प्रणाली में सुधार के उपाय करने के लिए परियोजनाएं प्रायोजित की गई थीं। पूर्णतया महिलाओं के आर्थिक विकास और उनके कड़े परिश्रम में कमी लाने के लिए नए कार्यक्रमों का पता लगाया गया है जिसमें पहाड़ी क्षेत्रों में खेती के लिए कृषि के बेहतर तरीके, महिलाओं के लिए भेड़ पालन और ऊन की कताई के बेहतर तरीके शामिल हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है, जन शक्ति में लगभग आधी महिलाओं की शक्ति है। यदि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में उनके सहयोग को नजरअंदाज कर दिया जाए तो राष्ट्रीय विकास असंतुलित और सीमित हो जाएगा। तथापि, ऐतिहासिक कारणों से बड़ी संख्या में महिलाएं सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी रह गई हैं। इस प्रक्रिया को शीघ्रातिशीघ्र बदलने की आवश्यकता है।

संबधित साहित्य के अवलोकन से प्राप्त मुख्य मुद्दे:—

1. नई प्रौद्योगिकी ने महिलाओं को काम से हटा दिया है। जहां श्रम कुशलता वाले कार्यों में कई महिलाएं लगी हुई थीं वहां मशीन द्वारा किए गए कार्य को ज्यादा अच्छा समझा गया।
2. प्रौद्योगिकी ने न तो महिलाओं की निरक्षरण को दूर किया है और न उत्पादकता बढ़ाने के लिए गृह कार्य तथा उत्पादोन्मुख कार्य दोनों में ही महिलाओं की सहायता की है।
3. हमने निरक्षरता और शिक्षा की कमी इन दोनों को मिला दिया है और महिलाओं की अवनति के लिए निरक्षरता को दोषी ठहराया है। अनौपचारिक और कार्यात्मक साक्षरता वास्तव में ही महिलाओं की सहायता कर सकती है और उनके कौशल को बढ़ा सकती है।
4. यहां तक कि महिलाएं डेयरी जैसे क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

किन्तु जहां डेयरी के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान पर्याप्त मात्रा में है वहाँ भी महिलाओं को प्रबंध से बाहर रखा जाता तथा उपर्युक्त प्रबंधकीय प्रशिक्षण की सुविधाएं भी इन महिलाओं को प्रदान नहीं की जाती।

5. गांवों में बच्चों और स्कूलों की देखभाल के लिए गांव में से ही शिक्षक तैयार करने के लिए जो पाठ्यक्रम तैयार किए गए हैं उनमें यह देखने की आवश्यकता है कि ये सेवाएं स्त्रियों के योगदान से विहीन न रहें। इस बात पर प्रशिक्षण संस्थाओं तथा अनुसंधान कर्ताओं द्वारा विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

विभिन्न राज्यों की प्रगति रिपोर्ट के अनुसार इस योजना का निष्पादन संतोषानक नहीं है। महिलाएं अपने पारंपरिक कार्य ही कर रही हैं जिससे उन्हें पर्याप्त आय नहीं होती। प्रगतिशील और पिछड़े हुए सम्बन्धों को समुचित रूप से स्थापित नहीं किया गया है। लाभान्वितों का प्रबन्ध और कौशल प्रशिक्षण मानकीकृत नहीं है जिससे कि समूह प्रतियोगी बाजारों में प्रवेश कर सकें। बहुत से राज्यों में अभी तक प्रशिक्षण संस्थानों का ही पता नहीं लगाया गया है। योजना के अप्रभावी निष्पादन के प्रति जो एक अन्य कारण उत्तरदायी है वह है विभिन्न कार्यकर्ताओं का निम्न प्रेरणा स्तर। अन्त में यह कहा जा सकता है कि विकासात्मक कार्यकलापों में भाग लेने के लिए महिलाओं के रासते में सामाजिक बाधाएं आगे आ रही है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष से महिलाओं के लिये आय वृद्धि के अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रम सामने आये हैं, इसके अलावा आयवर्द्धक गतिविधियों के

जरिये भी स्त्रियों के लाभ के, विशेष कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। अभी तक के काम में तालमेल की कमी देखने में आयी है और इसे दूर करना होगा। स्त्रियों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं कोपूरा करने की तरफ तत्काल व भरपूर ध्यान देने की आवश्यकता है तभी हम इस विशाल जनसंसाधन का विकास में पूरा सहयोग ले सकेंगे और स्वयं इनका भी विकास हो सकेगा।

महिलाओं के व्यावसायिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में कार्यकारी दल द्वारा सुझाए गए व्यवसाय विषय परक क्षेत्र जिनमें महिलाओं के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं:

क) अनौपचारिक प्रशिक्षण के लिए सुझाए गए व्यवसाय

1. टंकाई, 2. तार को काम में लाना, 3. रेडियो की मरम्मत, 4. घर में प्रयोग होने वाली बिजली के उपकरणों की मरम्मत, 5. बच्चों की पोशाक बनाना, 6. महिलाओं की पोशाक तैयार करना, 8. पुरुषों के कपड़ों की सिलाई, 9. चमड़े/कपड़े के पर्स/बैग बनाना, 10. प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सिल्क संक्रीण मुद्रण, 11. कुट्टी, 12. मछली पकड़ने के जाल बनाना, 13. कुर्सी बुनना, 14. जिल्दसाजी, 15. समुद्री सीपियों के उत्पाद, 16. हाथ की बुनाई, 17. मशीन की बुनाई, 18. पापड़, जैम, टमाटर की चटनी, 19. ब्लाक मुद्रण, 20. खजूर की पत्तियों की वस्तुएं, 21. पिनलेस प्रशिक्षण, 22. राजगिरी, 23. कशीदाकारी, 24. छींट कार्य, 25. चटाई बुनाई, 26. गुड़िया बनाना, 27. नारियल रेशे की कारपेट, पायराज, ब्रुश बनाना, 28. केन फर्नीचर, 29. चाक बनाना, 30. प्रक्षालक, 31. बनावटी फूल, 32. किरमिच की वस्तुएं, 33. लिफाफे, टैग तथा कार्यालय मिसिलें एवं सहायक पुर्जे।

ख) औपचारिक प्रशिक्षण के लिए सुझाए गए व्यवसाय

1. टी.वी. मकैनिक (सफाई-धुलाई तथा मरम्मत), 2. टेप रिकार्डर सफाई-धुलाई एवं रखरखाव (घरेलू), 3. (इलैक्टरानिकी यंत्र), 4. चिकित्सक इलैक्ट्रानिकी उपकरणों का रखरखाव, 5. आटो इलैक्ट्रीशियन एवं आर्मेचर वाइण्डर, 6. ट्रांसफारमर तथा मोटरवाइण्डर, 7. घरेलू उपस्करों की बिजली मोटर वाईडिंग, 8. वास्तुशिल्पीय नक्शानवीस, 9. विद्युत नक्शानवीस, 10. संरचनात्मक नक्शानवीस, 11. मैकेनिकल नक्शानवीस, 12. केन्टीन सेवाएं, 13. पाक-विद्या सम्बन्धी कार्य, 14. विक्रेता, 15. स्वागत अधिकारी, 16. कार्यालयीय कार्य, 17. होटल में स्टीवर्ड, 18. लेखाकार्य, 19. दूरभाष आपरेटर, 20. खरीद और भंडारण, 21. बुनाई, 22. आन्तरिक सज्जा, 23. पेंटिंग, 24. वाणिज्यिक कलाएं, 25. कम्प्यूटर सेवाएं, 26. पर्यटन/ट्रेवल एजेंसी, 27. फैशन डिजाइनर, 28. घड़ी मरम्मत, 29. चश्मों के निर्माण सम्बन्धी कार्य, 30. हीरा कटाई, आभूषण निर्माण।

आर्थिक गतिविधियों की सूची

1. कपड़ा सिलाई 2. स्वेटर आदि की बुनाई 3. कढ़ाई 4. करघे पर काम करना 5. सिले सिलाए कपड़े 6. दरी की करघे पर बुनाई 7. खादी कताई 8. चुन्नट डालना 9. चारपाई बनाना 10. बांस की टोकरी बनाना 11. ताड़ पत्ती से चटाई बनाना 12. खाद्य पदार्थों को संसाधित करना 13. पापड़ बनाना 14. अचार डालना 15. बेकरी कार्य 16. सब्जियां उगाना 17. मछली का जाल बुनना 18. मछलीपालन 19. मुर्गीपालन 20. बकरी पालन 21. बत्तखपालन 22. दुग्ध डेयरी 23. शूकर पालन 24. मधुमक्खीपालन 25. धान संसाधन 26. बीड़ी बनाना 27. चूना निर्माण कार्य 28. ईंट बनाना 29. ग्रेनाईट जैनी बनाना 30. ब्रुश बनाना 31. जिल्दसाजी 32. मुद्रण 33. मोमबत्ती निर्माण 34. चप्पल बनाना 35. प्लास्टिक सम्बन्धी कार्य 36. अगरबत्ती बनाना 37. माचिस बनाना 38. कुम्हारगीरी 39. पत्थर तोड़ना 40. पत्तल प्लेट बनाना 41. प्लेट बनाना 42. कागज के बैग बनाना 43. लिफाफे बनाना 44. टोकरी बनाना 45. साबुन तैयार करना।

अनुवाद: श्री कामेश्वर शर्मा
डी 512, नेताजी नगर
नई दिल्ली

सामाजिक वानिकी में क्रांति की आवश्यकता

नवीन चन्द्र जोशी

स्वाधीनता प्राप्ति के समय भारत के 32 करोड़ 90 लाख हैक्टेयर भूभाग में से सात करोड़ 50 लाख हैक्टेयर (लगभग 22%) क्षेत्र वनों से ढका हुआ था। उद्योग समूहों के विस्तार और शहरीकरण, जनसंख्या में वृद्धि और वनों की गैर-कानूनी ढंग से कटाई के परिणाम स्वरूप वन-क्षेत्र में काफी कमी आई और अब 22 प्रतिशत के स्थान पर केवल 10 प्रतिशत भू-प्रदेश ही वनों से सम्पन्न है। सरकारी अनुमान के अनुसार कुल भूभाग का आधा, जो लगभग सत्रह करोड़ 50 लाख हैक्टेयर बैठता है, भूमि के गुणों में गिरावट के कारण परती जमीन के रूप में मौजूद है। कुल 32 करोड़ 90 लाख हैक्टेयर भूमि में से उन्नीस करोड़ 10 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वनों से आच्छादित है, एक करोड़ अस्सी लाख हैक्टेयर जमीन बंजर है और दो करोड़ चालीस लाख हैक्टेयर भूमि पर चीन और पाकिस्तान का अवैध कब्जा है।

राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड के अनुसार रेगिस्तानी राज्य राजस्थान और उसके पड़ोसी मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र में सबसे अधिक परती जमीन है – प्रत्येक राज्य में एक-एक करोड़ हैक्टेयर ऐसी भूमि है। इनके बाद उत्तर प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश आते हैं जहाँ 50 लाख हैक्टेयर प्रत्येक के हिसाब से परती जमीन है। तमिलनाडु, केरल, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, पूर्वोत्तर राज्यों, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर राज्यों में से हरेक में पाँच लाख हैक्टेयर से कम क्षेत्र में परती जमीन फैली हुई हैं।

सरकारी तौर पर प्राप्त नवीनतम जानकारी के अनुसार भारत की 19.52% भूमि पर वन स्थित हैं। यह उस सूचना के मुकाबले कहीं ज्यादा हैं जिसमें वन-प्रदेश का प्रतिशत 11 से 14.1 तक बताया जाता है। भूमि सर्वेक्षण अभिलेखों में एकत्रित आंकड़ों के अनुसार तो इससे भी ज्यादा 22 प्रतिशत भूभाग पर वनों की स्थिति बताई गई है। इस बारे में आम सहमति है कि यह अनुमान कहीं अधिक लगाया गया है और ऐसा करते समय विभिन्न कारणों से वनों के नष्ट होने के परिणामस्वरूप वन प्रदेश में होने वाली कमी को ध्यान में नहीं रखा गया है जैसे वनों की छँटाई, चोरी-चकारी, ईंधन प्राप्त करने के लिए पेड़ों की अंधाधुंध कटाई आदि। भारत में चालीस प्रतिशत ऊर्जा जलाऊ लकड़ी, कृषि और पशुओं के गोबर से प्राप्त की जाती है।

पर्यावरण विशेषज्ञों की राय में देश के कम से कम एक तिहाई भाग में वन होने आवश्यक हैं और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास किये जाने चाहिए क्योंकि वर्तमान वन प्रदेश बहुत ही कम है। इसलिए सबसे बड़ी चुनौती मौजूदा वनों के संरक्षण और परती भूमि के विस्तार को रोकने की है। इसके लिए वन-रोपण कार्यक्रम लागू किये जाने चाहिए। भारतीय सर्वेक्षण विभाग और नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी के अनुसार 19.52 प्रतिशत भू-भाग में हरियाली है, 10 प्रतिशत क्षेत्र में घने वन हैं, 8 प्रतिशत इलाके में खुले वन हैं, 0.12 प्रतिशत क्षेत्र में पेड़ों के झुंड हैं और 1.10 प्रतिशत भूमि पर काफी उगाई जाती है। अनुमान है कि कम से कम दस करोड़ हैक्टेयर क्षयित भूमि पर प्रति वर्ष वन लगाये जाने की अतीव आवश्यकता है, तभी जाकर इस शताब्दी के अन्त तक पर्यावरण में संतुलन लाया जा सकेगा।

पर्यावरण विशेषज्ञों द्वारा तेजी से हो रहे वनों के विनाश के गंभीर खतरों की चेतावनी दिये जाने के बाद केन्द्र सरकार वनों के क्षय को रोकने की दिशा में जागरूक हुई है। आठवीं योजना में सरकार वनों के विनाश को रोकने के लिए कानूनी व्यवस्था करने पर भी विचार कर रही है। इस कारण राज्यों को होने वाली राजस्व की हानि को भी संभवतः केंद्र पूरा करे। हाल ही में भारतीय वन अधिनियम, 1980 को संशोधन किये जाने से राज्य सरकारों को प्राइवेट लोगों, निगमों आदि को पट्टे पर वन-भूमि देने से पहले केंद्र सरकार से मंजूरी लेना आवश्यक होगा। आशा की जाती है कि इस व्यवस्था से पेड़ों की कटाई में कमी होगी क्योंकि यह मंजूरी फिर से पेड़ लगाने या अपने आप उगे पेड़ों की सफाई के लिए भी मंजूरी लेनी जरूरी होगी। फिर भी जब तक जलाऊ लकड़ी की जगह कोई और ईंधन तथा इमारती लकड़ी का विकल्प नहीं ढूंढा जाता तब तक पेड़ों की कटाई को रोक पाना और वन रोपण के कार्यक्रम लागू करना कठिन होगा। अतः इस समय मौजूदा वनों की रक्षा, परती भूमि

का फैलाव रोकने और जहाँ पेड़ काटे जा चुके हैं वहां नये पेड़ लगाने की यथासंभव कार्यवाही की जानी चाहिए।

वनों की रक्षा के लिए बनाये गये कड़े कानूनों के बावजूद इन्हें ठीक से लागू नहीं किया गया है। लेकिन इससे भी ज्यादा दुखद बात यह है कि वन-रोपण के कार्यक्रम निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में बहुत पीछे रहे हैं। उदाहरण के लिए वर्ष 1987 में 50 लाख हैक्टेयर अवगुणित भूमि में पेड़ लगाने का लक्ष्य था जो पूरा नहीं किया जा सका। लेकिन प्रसन्नता की बात है कि वनों के विनाश से पीड़ित क्षेत्रों के निवासियों के आसन्न खतरों को समझते हुए वनों की रक्षा के लिए आन्दोलन शुरू किये। चिपको आन्दोलन इनमें सें सबसे प्रमुख है। इसके द्वारा हिमालय क्षेत्र में स्थित सभी पेड़ों की कटाई पर रोक लगाने को कहा गया। वास्तव में कुछ दशक पहले सन् 1950 के शुरू में "वनमहोत्सव" अभियान शुरू किया गया था। यद्यपि इसका उद्देश्य पेड़ों की रक्षा करना था लेकिन इसके ज्यादा परिणाम नहीं मिले।

हर वर्ष देश के पंद्रह लाख हैक्टेयर क्षेत्र से वनों का सफाया होता जा रहा है और लगभग 12 अरब टन उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो जाती है। वनरोपण कार्यक्रमों की सफलता मुख्यत: दो बातों पर निर्भर करती है – एक तो लोगों की भागीदारी और दूसरी पूंजी निवेश। लेकिन एक और महत्वपूर्ण बात जो हम भूल जाते हैं वह है अधिकतम परिणाम अथवा लाभ प्राप्त करने की विधि। एक ऐसा प्रभावी कार्यक्रम "सामाजिक वानिकी" है जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए राष्ट्रीय कृषि आयोग ने (1976) इसके उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए इसके अन्तर्गत (1) जलाऊ लकड़ी की जगह गोबर के इस्तेमाल, (2) छोटे टिम्बरों की सप्लाई, (3) चारे की सप्लाई, (4) कृषि क्षेत्रों की वातचक्र से रक्षा और (5) मनोरंजन की जरुरतों को शामिल किया गया था। इसके लिए (1) फार्म वानिकी, (2) ग्रामीण वानिकी और (3) शहरी वानिकी पर विशेष ध्यान दिया जाना अपेक्षित है।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम में एक तरह से काम न आने वाली भूमि, श्रम और जल साधनों का, जलाऊ लकड़ी, चारे, खाद्यान्न, खाद का उत्पादन और निर्माण-कार्य में आने वाले छोटे टिम्बर बनाना शामिल है। इस प्रकार इसमें वानिकी, कृषि और पशु-पालन को सम्मिलित किया गया है। सरकार ने गाँवों के आस-पास मौजूद वन-संसाधनों को ग्रामीण क्षेत्रों में मकान बनाने और कृषि यंत्रों को तैयार करने के लिए प्रयोग में लाने की जरुरत को पहचाना है। इसलिए वनों पर निर्भरत समाप्त नहीं की जा सकती। इस समस्या के समाधान के लि व्यापक स्तर पर देश भर में सामाजिक वानिकी के कार्यक्र चलाने होंगे जिनके जरिये सरंक्षण, उत्पादन और पर्यावरण सुधार के महत्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें।

परंपरा से वन लोगों की बस्तियों से काफी दूर स्थानों प होते आये हैं। सामाजिक वानिकी में लकड़ी की वस्तुओं व निर्माण का कार्यक्रम गैर कृषि भूमि तथा बंजर भूमि पर लाग किया जा सकता है। केंद्र सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के अंतर्गत सामाजिक वानिकी कार्यक्रम में पंचायती जमीनों सड़क के किनारे रेलवे की जमीन, नहरों के किनारे, शहरों औ कस्बों के आसपास की जमीन पर पेड़ लगाये जा रहे हैं। कई राज्यों में विदेशों से प्राप्त सहायता से कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। अब तक सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों पर लगभग पांच अरब रुपये खर्च होने का अनुमान है।

सामाजिक वानिकी के वास्तव में अनेक लाभ हैं। इससे समाज के लिए आवश्यक विभिन्न उपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती हैं जैसे ईंधन, छोटे टिम्बर और दूसरी जरूरी चीजें। इसके अतिरिक्त लोगों को पूरे समय काम मिलता है और उन्हें अपनी आमदनी बढ़ाने का अवसर मिलता है। कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्य किए जाते हैं जिनसे ग्रामीण समाज के आपसी संपर्क और सामूहिक हित को बढ़ावा मिलता है। उल्लेखनीय है कि नये बीस सूत्री कार्यक्रम में सामाजिक वानिकी को विशेष स्थान दिया गया है। अनुमान है कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक दस लाख चालीस हजार हैक्टेयर भूमि पर ये कार्यक्रम चलाये गये। छठी योजना में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए सामाजिक वानिकी में पर्यावरणीय एवं औद्योगिक वानिकी को भी शामिल किया गया।

छठी योजना की अवधि में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम निम्न प्रकार कार्यान्वित किया गया :–

1. केंद्र द्वारा चलाई गई सामाजिक वानिकी योजना जिसके अन्तर्गत ईंधन की कमी वाले 157 जिलों में जलाऊ लकड़ी के पौधे रोंपे गये। इस पर रु. 50 करोड़ खर्च हुए।

2. ग्यारह राज्यों में विदेशी सहायता से संचालित कार्यक्रम जिन पर एक अरब इकतालीस करोड़ अस्सी लाख रुपये व्यय हुए।

यह सच है कि नये बीस सूत्री कार्यक्रम में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम को शामिल करने के बाद वनरोपण का कार्य बहुत तेजी से हुआ। विदेशी सहयोग से संचालित की जाने वाली परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक, स्वीडन, अमरीका, कनाडा तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी ने सहायता दी है। इससे विभिन्न राज्यों में कार्यक्रम चलाये जायेंगे। सातवीं योजना (1985-90) के अन्तर्गत "राष्ट्रीय छत्र" परियोजना शुरू की गई है। हाल ही में जर्मन गणराज्य ने भी हिमाचल प्रदेश में व्यापक स्तर पर सामाजिक वानिकी कार्यक्रम लागू करने के लिए सहायता प्रदान की है। यह बहुत उत्साहवर्धक बात है कि छठी योजना की अवधि में सामाजिक वानिकी के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए थे उससे कहीं अधिक क्षेत्र में (30 लाख 47 हजार हैक्टेयर) वानिकी-कार्य किये गये। छठी योजना अवधि में सामाजिक वानिकी और उत्पादन वानिकी कार्यक्रमों में कुल मिलाकर 22.5 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में पौधे लगाये गये जबकि इससे पहले की सभी योजनाओं में कुल 35.5 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में पौधे रोपे गये थे।

इस प्रकार सरकार का सामाजिक वानिकी कार्यक्रम न केवल वन क्षेत्र के प्राकृतिक स्वरूप के विनाश की ही क्षतिपूर्ति करता है बल्कि भूमि के कुल उपयोग में भी वन-रोपण को प्रमुख स्थान दिलाता है। इसके फलस्वरूप देश के मानचित्र पर कुछ हरे-भरे द्वीप उभर आये हैं जो सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत अब तक बंजर पड़ी भूमि पर किए गए उद्यम का सुफल है लेकिन नयी उपलब्धियों के कारण कुछ जटिलताएं भी पैदा हुई हैं। एक ओर तो बड़ी मात्रा में वनों की हरियाली पर हमला हो रहा है, दूसरी ओर सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत कृषि योग्य जमीन के बड़े हिस्से को काम में लाया जा रहा है। इस कारण समाज पर आर्थिक भार पड़ सकता है। अतः जहाँ ये कार्यक्रम लागू किए जाने हों वहां लागत-लाभ का विश्लेषण कर लेना उपयुक्त होगा।

लेकिन वित्तीय लागत-लाभ विश्लेषण से पर्यावरण तथा रोजगार के अधिक लाभ दिलाने की बात स्पष्ट नहीं होती जो लागत-लाभ के असमान अनुपात को नगण्य कर देती है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) के नदियों की सफाई और विकास के कार्यक्रमों की सिफारिश करते समय लागत-लाभ अनुपात को महत्व नहीं दिया। लागत-संगति को मापने के लिए व्यापक मानक तय करने के प्रयास भी किये गये हैं। चूंकि भूमि के अवगुणन की रोकथाम तथा अवगुणित भूमि से उपज प्राप्त करने में कई वर्ष लग जाते हैं इसलिए ऐसे विश्लेषण के लिए 10-20 वर्ष की अवधि पर विचार करना उपयुक्त होगा। 1985-86 में केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने दो अरब 50 करोड़ रुपयों की कुल राशि का प्रावधान किया था जिसका प्रयोग सामूहिक स्वामित्व वाली तथा कृषि भूमि पर सामाजिक वानिकी कार्यक्रम संचालित करने पर किया जाना था। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत 20 प्रतिशत बजट राशि सामाजिक वानिकी के लिए उपलब्ध करायी जाती है। इस तरह दो अरब रुपये और मिल जाने से 1985-86 वर्ष में कुल मिलाकर चार अरब 50 करोड़ रुपये प्राप्त हुए। स्पष्टतया आने वाले वर्षों में वृक्षारोपण के लिए और अधिक धन राशि की व्यवस्था की जानी आवश्यक थी क्योंकि प्रतिवर्ष 50 लाख हैक्टेयर भूमि पर पौधे लगाने का राष्ट्रीय लक्ष्य रखा गया।

'जीवन रक्षा के लिए वन' के अपने नारे को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने सातवीं योजना के अन्तर्गत वानिकी का एक व्यापक कार्यक्रम बनाया है। इस कार्य के लिए 70 अरब रुपये की व्यवस्था की गयी है। यह राशि छठी योजना में इस कार्य के लिए निर्धारित राशि के मुकाबले दस गुणा अधिक है। प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी ने वनों के विनाश को रोकने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। उन्हीं के सोच-विचार को मूर्त रूप देने के लिए हाल ही में राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड का गठन किया गया है जिसका लक्ष्य हर वर्ष 50 लाख हैक्टेयर भूमि पर जलाऊ लकड़ी तथा चारे के पौधे रोपना है। सातवीं योजना में देश की कुल जमीन के 33 प्रतिशत भाग पर वनरोपण के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है। अन्ततोगत्वा सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम अपनाकर हम भूमि कटाव, सीमांत भूमि को फिर से उत्पादन योग्य बनाने, तीव्र वातचक्रों, वर्षों की कमी, पानी एकत्र होने, जलाऊ लकड़ी की तंगी, इमारती लकड़ी और वनों से प्राप्त होने वाले अन्य पदार्थों की कमी जैसी समस्याओं को हल कर सकने में समर्थ होंगे।

यहाँ यह बताना संगत होगा कि सरकार ने मई 1952 में एक नयी राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा की थी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ वनों का कार्यों के अनुसार वर्गीकरण किया गया था। बाद में 1980 में पास किये गये वन (संरक्षण) अधिनियम के अनुपालन में वन-भूमि का गैर-वानिकी कार्यों के लिए उपयोग किये जाने में कमी आई हालांकि अभी भी कई स्थानों पर इसका ठीक तरह से कार्यान्वयन नहीं हो रहा है। वन-नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि वैज्ञानिक पद्धति से लगाये जाने वाले वनों में पशुओं को नहीं चरने दिया जाये, विशेष रूप

से जैसे पशु सरेआम चरने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। वैसा कतई नहीं होना चाहिए। लेकिन यह पूर्ण रूप से सच है कि इस व्यवस्था के बावजूद पशु वनों में चरने को छोड़ दिये जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में साधारण चराई का इतना ज्यादा असर नहीं पड़ता बल्कि इसे काफी हद तक अपरोक्ष रूप से लाभ ही पहुंचता है। जंगलों में आग लगने या पानी भरने आदि का खतरा कम हो जाता है लेकिन कुशल वन-प्रबंध के लिए जरुरी है कि चराई का स्थान और समय तथा वहां चरने के लिए छोड़े जाने वाले पशुओं की संख्या पर नियंत्रण रखा जाये। सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के अन्तर्गत चरागाह और चारे के पेड़ों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। ऐसा करने से पहले से अधिक दूध मिल सकेगा, चराई से होने वाले नुकसान में कमी होगी और मिट्टी के गुणों में भी सुधार होगा।

सामाजिक वानिकी के सम्बन्ध में एक आर्थिक योजना बनाना भी आवश्यक है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या और संसाधनों के बारे में जानकारी एकत्र की जाये जैसे सम्बन्धित गांव की भूमि, उपलब्ध अथवा अपेक्षित धनराशि,गांवों के प्रमुख व्यक्तियों तथा साथ ही लोगों की अपेक्षाओं का पता लगाया जाये। योजनाओं को भी सम्बन्धित लोगों की राय-सम्मति से अंतिम रूप दिया जाये। तकनीकी योजना बनाते समय आवश्यक धनराशि का अनुमान लगाया जाये, योजना के सफलतापूर्वक लागू होने पर उससे किस प्रकार लाभ मिलेगा यह निश्चित किया जाये और फिर योजना को कार्य रूप देने तथा उससे सम्बन्धित साज-समान अथवा परिसंपत्ति की देखभाल और प्रबंध करने के लिए एजेंसियों और व्यक्तियों को चुना जाये। यदि इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से योजना बनाकर लागू की जाये तो सामाजिक वानिकी का लाभ चुने हुए क्षेत्र को मिलना सुलभ होगा। जगह-जगह काम फैलाने की वर्तमान पद्धति की बजाय चुने हुए स्थानों पर कार्यक्रम लागू करना अधिक सार्थक है अत: मौजूदा व्यवस्था को बदला जाए। सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत भूमि के विशेष अवधि के दौरान प्रयोग की प्रणाली का भी विश्लेषण किया जाना चाहिए। इस कारण पेड़ों के संरक्षण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। गांवों के प्रमुख व्यक्तियों को चुनकर उन्हें सामाजिक वानिकी का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। भूमि विकास कार्यक्रम में सामाजिक वानिकी को अनिवार्य रूप में शामिल किया जाना चाहिए। भारत में वनों में बढ़ोत्तरी करने तथा नष्ट वन-क्षेत्रों को फिर से हरा-भरा बनाने के काम में वन-नर्सरियां भी महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं। पचास लाख हैक्टेयर भूमि में वन लगाने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, जैसा कि सातवीं योजना में निर्दिष्ट है, दस अरब पौधों के बूटे चाहिए। इस देश में हर वर्ष तीन अरब नर्सरी पौधों का इस्तेमाल करके पंद्रह लाख हैक्टेयर भूमि में वृक्ष लगाये जा रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इतने बड़े कार्यक्रमों को केवल सरकारी विभागों के बूते पर ही सफलता से लागू करना कठिन है। अत: पौधे तैयार करने के लिए अलग से व्यवस्था करनी होगी और इस काम में गैर-सरकारी लोगों का सहयोग लिया जाना जरुरी है। 1987-88 तक कम से कम पचास प्रतिशत नर्सरियां गैर सरकारी क्षेत्र में होनी चाहिए। वास्तव में एक नर्सरी दस किलोमीटर की दूरी के भीतर होनी चाहिए। एक नर्सरी में कम से कम 25,000 बूटे तैयार किये जायें। ऐसा होने पर बहुत से बेकार लोगों को काम करने का मौका मिलेगा, उनकी बेरोजगारी दूर होगी।

नारियल, रेशे वाले और गूदे वाले फलों, जामुन, काजू और आम के पेड़ भारत की गर्म और नमी वाली जलवायु में आसानी से उगाये जा सकते हैं इसलिए इन्हें सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम में बड़े पैमाने पर लगाने की ओर ध्यान देना उपयुक्त होगा। वर्तमान में केवल 23 प्रतिशत भू भाग पर वनों की मौजूदगी के मुकाबले देश की 33 प्रतिशत भूमि को वनों से ढकने का लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत फलदार वृक्ष लगाये जायें। ग्राम्य वानिकी, कृषि वानिकी और शहरी वानिकी के अधीन परती भूमि का अलग-अलग या सामूहिक रूप से उपयोग करके आसानी से फलदार वृक्ष लगाये जा सकते हैं। इनकी लकड़ी ईंधन के रूप में इस्तेमाल की जा सकती है। सामाजिक वानिकी और व्यापारिक बगीचों में फलदार वृक्ष लगाने में अंतर यह है कि वानिकी में वृक्ष लगाने के लिए किन्हीं अतिरिक्त साधनों की जरूरत नहीं पड़ती।

राष्ट्रीय परती भूमि बोर्ड के अनुसार भारत में भूमि के लगातार अप्रयुक्त रखने से उसकी उपजाऊ शक्ति में भारी ह्रास हो रहा है। मनुष्यों और पशुओं की जनसंख्या में वृद्धि के कारण बढ़ते हुए दबाव, पर्यावरण की बाधाओं के बावजूद जमीन का बांधो और सड़कों के निर्माण के लिए प्रयोग, ठेकेदारों द्वारा मनमाने तरीके से वन संपदा के दुरुपयोग, जलग्रहण क्षेत्र की ओर ध्यान दिये बिना सिंचाई सुविधाओं के विस्तार अथवा मुख्य क्षेत्रों में पानी इकट्ठा हो जाने या क्षार पैदा होने, छोटी भूमि जोतों पर उनके अनुसार खेती के तरीके नहीं अपनाये जाने आदि कारणों से भूमि की उर्वरता नष्ट हो गई हैं। साढ़े सत्रह

करोड़ हैक्टेयर भूमि जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का आधा हिस्सा है, और कुल उत्पादक क्षेत्र का दो-तिहाई भाग है, उसे फिर से लाभप्रद प्रयोग और उत्पादन के योग्य बनाने के लिए विशेष उपचार के उपाय करने की जरूरत है। भूमि के उपजाऊ गुणों के नष्ट होने का मुख्य कारण पानी और हवा के कारण होने वाला कटाव है जिससे पंद्रह करोड़ हैक्टेयर भूमि प्रभावित है। इसके अलावा और कई कारण जैसे अदल-बदल कर फसलें उगाने (40 लाख हैक्टेयर), पानी रुक जाने से (60 लाख हैक्टेयर) अम्ल और क्षार से (80 लाख हैक्टेयर), नदियों के प्रवाह बाढ़ आदि (70 लाख हैक्टेयर) कारणों से जमीन की उत्पादन शक्ति अवगुणित होती जा रही है। सन् 2000 तक जनसंख्या में और वृद्धि के परिणामस्वरूप अनाज और जरूरी वस्तुओं, मकान सड़कों आदि के लिए जमीन की जरूरतें और बढ़ जायेंगी। राष्ट्रीय कृषि आयोग का अनुमान है कि ईंधन सहित अन्य विभिन्न प्रयोजनों के लिए चार करोड़ हैक्टेयर भूमि पर लकड़ी का उत्पादन और फसलों और चारे के लिए एक-एक करोड़ हैक्टेयर भूमि का प्रयोग करना आवश्यक हो जायेगा। इसमें गैर-कृषि कार्यों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भूमि को भी शामिल करना होगा विशेष रूप से वह भूमि जिसकी सन् 2000 तक शहर बसाने के लिए जरूरत पड़ेगी।

इन सब बातों को देखते हुए यह बहुत जरूरी है कि सामाजिक वानिकी के क्षेत्र में कारगार कदम उठायें जिससे कि पानी और कटाव के कारण होने वाला भूमि क्षय रोका जा सके। हमें सीमित भू-प्रदेश पर उपलब्ध संसाधनों का इस तरह से अधिकाधिक दोहन करना है कि ग्रामीण समाज के सभी लोगों को उनका लाभ प्राप्त हो सके। आने वाले समय में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से किये जा रहे वर्तमान प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। देश में प्रति व्यक्ति उपलब्ध वन-क्षेत्र केवल 671 वर्ग मीटर है जबकि जरूरत 1605 वर्ग मीटर क्षेत्र की है। इस समय कुल वन-प्रदेश की आवश्यकताओं का कुल 41.8 प्रतिशत ही मिला हुआ है जिसे हर सूरत में कम से कम 2.29 प्रतिशत बढ़ाया जाना चाहिए।

सच तो यह है कि भारत में किसी भी अन्य सरकारी कार्यक्रम को लेकर इतना भ्रम पैदा नहीं हुआ अथवा संचार माध्यमों ने भी किसी अन्य पर इतना ध्यान नहीं दिया जितना सामाजिक वानिकी पर। इस कार्यक्रम के उद्देश्य एवं उपलब्धियों दोनों के बारे में मतभेद है। यह कार्यक्रम 1974 में शुरू हुआ था और अब इसे इसकी व्यावहारिकता और उपयोगिता के बारे में सभी आशंकाओं को तिलांजलि देकर मजबूती से लागू करने की जरूरत है। यह कहा जाता है कि सामाजिक वानिकी के विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत वृक्षारोपण का कार्य कुल मिलाकर संतोषजनक रहा है लेकिन तीन कारणों से यह अपने प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाया है – (1) इससे अमीर किसानों को सहायता दी गई है, (2) इससे कोई खास सामाजिक या पर्यावरण सम्बन्धी लाभ नहीं हुआ है, ज्यादा लोगों को फायदा नहीं पहुँचा है। (3) कुछ मामलों में इससे गरीब लोगों की स्थिति पहले से और खराब हुई है। (कृपया देखें 'डेवलपिंग इंडियाज वेस्टेड लैंड्स, प्रकाशक: विज्ञान और पर्यावरण केंद्र, नयी दिल्ली, 1986) चूंकि जहां लकड़ी की मांग होगी वहाँ पेड़ लगाना लाभदायक होगा, उससे पैसा कमाने का आकर्षण होगा, इसलिए आमतौर पर इस कार्यक्रम से बड़े किसानों को फायदा होता है। विश्वास किया जाता है कि आरंभ में सामाजिक वानिकी को गुजरात, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में जो सफलता मिली उसका कारण वहां के मध्यम (2 हैक्टेयर क्षेत्र में) तथा बड़े (4 हैक्टेयर क्षेत्र में) किसानों का कार्यक्रम में भाग लेना और लकड़ी के दामों में वृद्धि होना था। गरीब लोगों को बुनियादी जरुरतों को पूरा करने में कार्यक्रम के असफल रहने की बात इस तथ्य से सिद्ध हो जाती है कि बड़े किसान रागी के स्थान पर सूकेलिप्टस के पेड़ उगाते हैं जिनके कारण वहां के लोगों को खाने को कम अनाज मिलता है, बाजार में अनाज के दाम बढ़ जाते हैं और खेतिहर मजदूरों को काम से हाथ धोना पड़ता है क्योंकि यूकेलिप्टस को ज्यादा देखभाल की जरूरत नहीं पड़ती।

लेकिन गरीब से गरीब लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए नई योजनाएं बनाई जा रही हैं। राजस्थान में सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत गांव के निवासियों को पेड़ लगाने के लिए पट्टे पर जमीन दी जा रही है। पश्चिम बंगाल में भी सामाजिक वानिकी के विशेष कार्यक्रम के तहत ग्रामीण समाज के गरीब लोगों को फायदा पहुंचाया जा रहा है। अब जरूरत इस बात की है कि वनरोपण के कार्य में अधिक से अधिक स्वयंसेवी संगठनों की सहायता ली जाये। राजस्थान के अजमेर जिले में ज्वाला विकास खण्ड में और उत्तर प्रदेश के चमोली जिले में गोपेश्वर में दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल द्वारा चलाये गये सामाजिक वानिकी कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वानिकी विकास के क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठन कितना उत्तम कार्य कर सकते हैं। ग्राम स्वराज्य मंडल चिपको आंदोलन से संबद्ध है जिसका उद्देश्य हिमालय क्षेत्र में वनों का विनाश रोकना और उनकी रक्षा करना है। सामाजिक वानिकी

कार्यक्रम को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए वन-व्यवस्था से संबद्ध लोगों, ग्रामीणों, राजनीतिज्ञों, निर्णय लेने वालों और वनरोपण एवं वन संरक्षण में रुचि लेने वाले अन्य सभी लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य सभी दृष्टि से यह कार्यक्रम अत्यंत प्रशंसनीय है। इससे हमारे पर्यावरण में सुधार लाने और उसे स्वस्थ, संतुलित बनाये रखने मे निश्चित रूप से बड़ी सहायता मिलेगी जिसका लाभ देश के अन्य क्षेत्रों में भी परिलक्षित होगा।

अनुवाद : पी.सी. पाठक

148, स्कूल ब्लाक, शकर पुर, दिल्ली-92

जन संचार पर हिन्दी में मौलिक लेखन के लिए "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय से संबंधित विषयों (प्रकाशन, दूरदर्शन, प्रसारण, विज्ञापन, पत्रकारिता, फिल्में आदि) पर हिन्दी में मौलिक लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रतिवर्ष:-

प्रथम पुरस्कार	**10,000 रुपये (दस हजार रुपये)**
द्वितीय पुरस्कार	**7,000 रुपये (सात हजार रुपये)**
तृतीय पुरस्कार	**5,000 रुपये (पाँच हजार रुपये)**

के तीन नकद पुरस्कार दिए जाते हैं। इस वर्ष पुरस्कार के लिए **जनवरी, 1987 से 31 दिसम्बर, 1987** तक की अवधि में प्रकाशित पुस्तकें अथवा पाण्डुलिपियां विचारार्थ स्वीकार की जायेंगी।

प्रविष्टियां भेजने की अन्तिम तिथि

इस पुरस्कार के लिए प्रकाशित पुस्तकों/पाण्डुलिपियों की छः प्रतियां निर्धारित प्रपत्र सहित मोहर बन्द लिफाफे में **30 अप्रैल, 1988** तक भेज दी जानी चाहिए। प्रविष्टियां भेजने से पूर्व पुरस्कार संबंधी नियमों तथा पूर्ण विवरण के लिए **श्री कलानन्द शर्मा**, सहायक निदेशक (राजभाषा) प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 को लिखें या सम्पर्क करें।

ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न स्तरों पर निगरानी

पी.डी.वशिष्ट

एक प्रभावशाली निगरानी प्रणाली के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। विकास कार्यक्रमों और लाभार्थियों के लिए बनाई गई योजनाओं के लाभ पूरी तरह से और सही ढंग से उन लोगों तक न पहुँचने का एक कारण तो यह है कि इन कार्यक्रमों की निगरानी प्रणाली प्रभावशाली नहीं है और दूसरा कारण यह है कि इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है और संकल्पशक्ति का अभाव है। किसी योजना अथवा परियोजना को अमल में लाने के दो पहलू होते हैं:

(i) धनराशि का उचित उपयोग, और
(ii) अपेक्षित उद्देश्यों तथा परिणामों को प्राप्त करना।

धनराशि के बारे में पैसे के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार और पैसे को दूसरे कामों में लगा दिए जाने जैसी बातें कहीं जाती हैं और अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति विलम्ब तथा काम करने के घटिया तरीकों के बारे में उंगलियां उठाई जा रही हैं।

ऐसी परिस्थिति में, ग्रामीण विकास विभाग की योजनाओं को निम्नलिखित चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :–

(क) एक तो वे कार्यक्रम हैं जो ग्रामीण विकास विभाग राज्यों केन्द्र शासित क्षेत्रों की जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों को निधियां देकर सीधे तौर पर, उनकी मार्फत कार्यक्रमों को अमल में लाता है और उन्हें पूरा करता है। इस श्रेणी में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.), ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा बच्चों का विकास (डवाकरा) और ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्राइसेम) आदि को शामिल किया जा सकता है।

(ख) दूसरे वे कार्यक्रम हैं जिन्हें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम आदि के अन्तर्गत राज्यों के ग्रामीण विकास विभागों/जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों द्वारा वित्त पोषित किया जाता है लेकिन उन्हें अन्य एजेंसियों जैसे वन, भवन निर्माण तथा सड़क आदि द्वारा पूरा किया जाता है।

(ग) तीसरे वे कार्यक्रम हैं जिनके अन्तर्गत पेय जल एवं भूमि सुधार आदि जैसी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्र राज्य के ग्रामीण विकास विभागों के अलावा अन्य विभागों जैसे लोक स्वास्थ्य, कृषि तथा राजस्व आदि को सीधे तौर पर निधियां प्रदान करता है।

(घ) चौथे वे विविध कार्यक्रम हैं जिन्हें सीधे ग्रामीण विकास विभाग के तत्वाधान में चलाया जाता है अर्थात् लोक कार्यक्रम तथा ग्रामीण तकनीकी विकास परिषद् (कापार्ट), राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान (एन.आई.आर.डी.) से सम्बन्धित कार्यक्रम और सेमिनारों/सम्मेलनों/कार्यशालाओं आदि का आयोजन।

चूंकि ग्रामीण विकास विभाग द्वारा चलाये जाने वाले सभी कार्यक्रम राज्यों के ग्रामीण विकास विभागों और जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों की मार्फत एक छत्र के नीचे वित्त पोषित और कार्यान्वित नहीं होते बल्कि उनमें कई अन्य स्वतंत्र विभाग/संगठन जैसे लोक निर्माण विभाग (भवन तथा सड़क), कृषि राजस्व, सिंचाई तथा लोक स्वास्थ्य आदि भी शामिल होते हैं इसलिए इस विभाग द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों के

साथ ही साथ निगरानी का काम न केवल राष्ट्रीय/राज्य के स्तर पर कठिन हो गया है बल्कि बुनियादी स्तर अर्थात् जिला ग्रामीण विकास एजेंसी/खण्ड पर और भी अधिक बोझिल हो गया है जहां अधिकांश विभाग न केवल अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहते हैं बल्कि ऐसे किसी हस्तक्षेप के प्रति नाराजगी प्रकट करते हैं।

राष्ट्रीय, राज्य, प्रभागीय, जिला, उप प्रभागीय और खण्ड स्तर पर निगरानी के लिए निम्नलिखित प्रणाली का सुझाव दिया जाता है–

1. जिला स्तर पर निगरानी

आजकल जिलाधीश जिला स्तर की मासिक बैठक बुलाते हैं जिसमें सभी विभागों के अधिकारी भाग लेते हैं। इस विभाग के सभी कार्यक्रमों की जिला स्तर पर समीक्षा करने के लिए परियोजना अधिकारी इन बैठकों का लाभ उठा सकते हैं। जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के परियोजना अधिकारियों के पास ग्रामीण विकास विभाग द्वारा जिला स्तर पर चलाए जा रहे सभी कार्यक्रमों और योजनाओं की सूची होनी चाहिए। इस विभाग के सभी प्रभागों का भी यह दायित्व हो जाता है कि वे कार्यक्रमों के बारे में सभी सूचनाओं और मार्गदर्शिकाओं आदि के ब्योरे सम्बन्धित जिलों के परियोजना अधिकारी को दें ताकि वह जिलाधीश द्वारा ली जाने वाली मासिक समीक्षा को सुकर और कारगर बना सकें। इसके अतिरिक्त, जिलाधीश 6 महीने में एक बार जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के परियोजना अधिकारियों को साथ लेकर विकास खण्ड का निरीक्षण कर सकता है जिसमें खण्डों में चल रहे सभी कार्यक्रमों की सही रिपोर्ट मिल सकती है।

जिलाधीश प्रत्येक तिमाही में सभी वित्तीय संस्थाओं की बैठक बुलाते हैं। इस बैठक के उद्देश्यों को और विस्तृत किया जा सकता है जिससे कि उस विभाग द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों की तिमाही समीक्षा की जा सके। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिले के परियोजना अधिकारी की भूमिका को विस्तृत तथा अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने की आवश्यकता है।

2. उप-मण्डल स्तर पर निगरानी

उप-मण्डल अधिकारी (सिविल) के कार्यालय की सेवाओं का लाभ उठाने में कुछ कठिनाइयां अवश्य आएंगी क्योंकि उनके लिए परम्परागत ग्रामीण रूढ़िवादिता में काम कर पाना कठिन होगा लेकिन यह कार्यालय कार्यक्रमों कीनिगरानी करने का एक अच्छा माध्यम हो सकता है। जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के परियोजना अधिकारी उप-मण्डल स्तर पर वैसी ही बैठकें बुला सकते हैं जैसी मासिक बैठकें जिलें में जिलाधीश बुलाते हैं। इसके अलावा, उप-मण्डल अधिकारी (सिविल) को हर तिमाही में एक विकास खण्ड का निरीक्षण करने के लिए भी कहा जा सकता है। इस कार्य में जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के सहायक परियोजना अधिकारी उनकी मदद कर करते हैं।

3. जिला ग्रामीण विकास एजेंसी तथा विकास खण्ड स्तर पर निगरानी

विकास खण्ड के स्तर पर जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों और खण्ड विकास कार्यालयों के परियोजना अधिकारियों/सहायक परियोजना अधिकारियों द्वारा निम्नलिखित तरीकों से निगरानी की जा सकती है :–

परियोजना अधिकारियों/सहायक परियोजना अधिकारियों को हर महीने एक विकास खण्ड कार्यालय में स्वयं जाकर निरीक्षण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, परियोजना अधिकारियों/सहायक परियोजना अधिकारियों को, जहां तक सम्भव हो, शासी निकाय की तिमाही बैठकों को, जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी द्वारा वित्त पोषित और कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों की निगरानी करने लिए एक प्रभावशाली साधन के रूप में काम में लाना चाहिये। प्रत्येक खण्ड विकास अधिकारी को महीने में एक बार अपने से सम्बन्धित स्टाफ की बैठक बुलानी चाहिये जिसमें अलग-अलग कार्यक्रम की समीक्षा की जा सके। उन्हें हर महीने प्रत्येक लगान क्षेत्र में आने वाली कम से कम एक पंचायत का निरीक्षण भी करना चाहिये।

4. मण्डल स्तर पर निगरानी

जहां कहीं मण्डल आयुक्तों के कार्यालय हैं उन्हें इस विभाग द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों की निगरानी का काम सौंपा जाना चहिये। हर तिमाही में मण्डल आयुक्तों को उनके कार्यक्षेत्र के अन्दर आने वाले जिलों की एक निगरानी बैठक बुलानी चाहिये जिसमें मण्डल स्तर पर सभी विभागों के मुख्य अधिकारियों को आमंत्रित किया जाना चाहिये ताकि प्रत्येक कार्यक्रम की सही ढंग से समीक्षा की जा सके।

5. राज्य स्तर पर निगरानी

राज्य स्तर पर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जो जिला स्तर की भांति राज्य स्तर पर भी मासिक बैठकें आयोजित करके पूरे राज्य में कार्यक्रमों के निष्पादन की समीक्षा कर सके। ग्रामीण

शेष पृष्ठ 18 पर

औद्योगिक विकास के लिए वन-संरक्षण और सामाजिक वानिकी की आवश्यकता

निर्मल गांगुली
बी. के. शर्मा

वनों के अतंर्गत आने वाली भूमि को अन्य कामों के उपयोग मे लाये जाने से रोकना बहुत जरूरी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में वन-संरक्षण तथा सामाजिक वानिकी के क्षेत्र का विस्तार करने की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। वर्तमान वनों का संरक्षण और देशव्यापी वनीकरण तथा सामाजिक वानिकी कार्यक्रम चलाया जाना निम्न कारणों से भी जरूरी है :—

1. पर्यावरण की सुरक्षा
2. जन-सामान्य की ईंधन, चारे और अन्य घरेलू वस्तुओं की पूर्ति ।
3. वन-आधारित ग्रामीण, लघु और बड़े उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति।

पर्यावरण संरक्षण और वनों से मिलने वाले विभिन्न उत्पादों की दृष्टि से देश के सर्वांगीण आर्थिक विकास में वन संसाधनों की भूमिका और महत्व अब काफी बढ़ गया है। देश की एक तिहाई भूमि में वनों का विकास करना बहुत आवश्यक है। बीसवीं सदी के अंत तक इस लक्ष्य को प्राप्त करने के हर संभव प्रयास किये जाने चाहिये।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्न प्रयास करने आवश्यक होंगे :—

(क) नाजुक इलाकों में पर्यावरण और विविध प्रकार के जीवजंतुओं और वनस्पतियों का संरक्षण।
(ख) सामाजिक वानिकी, फार्म वानिकी और पौधे लगाने के अन्य कार्यक्रम चलाकर बड़े पैमाने पर वनीकरण करना ताकि वनों से आच्छादित क्षेत्र बढ़ाया जा सके।
(ग) लोगों की ईंधन, चारा अन्य वन-उत्पाद और लकड़ी की रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करना।
(घ) लोगों में जागरुकता जगाना ताकि वन-उत्पादों का ईंधन के रूप में उपयोग कम से कम किया जाए।
(ड.) इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यापक जन आंदोलन शुरू करना।

ईंधन के रूप में लकड़ी का प्रयोग कम करने के लिए सरकार ने 1985 में एक अंर्त मंत्रिमंडलीय ग्रुप का गठन किया। इस ग्रुप को लकड़ी के उपयोग की वर्तमान स्थिति की समीक्षा और वनों की लकड़ी के स्थान पर वैकल्पिक ईंधन के लिए उपाय सुझाने थे। ग्रुप ने अप्रैल 1986 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं :—

(क) गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग को बढ़ावा देना और लकड़ी के किफायती इस्तेमाल वाले चूल्हे तैयार करना।
(ख) उद्योगों को लकड़ी का प्रयोग कम करने पर वित्तीय प्रोत्साहन देना।
(ग) ईंधन के वैकल्पिक साधनों के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उत्पाद शुल्क में रियायत।
(घ) सरकारी विभागों में लकड़ी के इस्तेमाल पर नियंत्रण।
(ड.) लकड़ी पर आधारित विभिन्न उद्योगों में वैकल्पिक कच्चेमाल का प्रयोग

ग्रुप ने बड़े पैमाने पर पौध लगाने और समुचित अनुसंधान और विकास कार्यों की भी सिफारिश की।

उद्योगों के लिए लकड़ी की आवश्यकता

उद्योगों में लकड़ी का उपयोग कम करने के निरंतर प्रयासों के बावजूद, ऐसे उद्योगों में लकड़ी की जरूरत बनी हुई है। राष्ट्रीय कृषि आयोग (एन.सी.ए.) के अनुमानों के अनुसार 1985-90 के दौरान और 2000 ईस्वी में लकड़ी की माँग को पूरा करने लायक आपूर्ति नहीं हो पाएगी। नीचे बनी तालिका से यह बात स्पष्ट होती है।

उद्योगों के लिए लकड़ी का उत्पादन और माँग राष्ट्रीय कृषि आयोग का आकलन

(दस लाख घन मीटर में)

	1985	1990	2000
माँग	23.31	29.80	37.50
इस समय उत्पादन में कमी (–)	13.50	13.50	13.50
अतिरिक्त उत्पादन में अनुमानित कमी (–)	2.45	5.46	5.62
कमी	7.36	10.84	18.36

अनुमान लगाया गया है कि सातवीं योजना अवधि के दौरान 20 लाख हैक्टेयर जमीन में वन लगा कर इस कमी को दूर किया जा सकेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि वन संसाधनों के संरक्षण और सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों को चलाया जाना बहुत जरूरी है। यह भी निर्विवाद है कि लकड़ी पर आधारित उद्योगों में गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों और वैकल्पिक ईंधन के लक्ष्य पूरे करना बहुत आवश्यक है। इसके साथ ही लकड़ी पर आधारित उद्योगों के लिए भी लकड़ी का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वनों में अक्सर जनजतियों के गरीब लोग रहते हैं जो बिचौलियों और ठेकेदारों के जाल में आसानी से फंस जाते हैं। इन लोगों को शोषण से बचाने के लिए जनजातीय लोगों को सहकारी समितियों के माध्यम से संगठित करना होगा। स्थानीय स्तर पर वन-आधारित उद्योग लगाने होंगे और सरकार को उचित विपणन सुविधाएं उपलब्ध करानी होंगी। साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि वानिकी पर आधारित योजनाएं जनजातीय संस्कृति और मूल्यों के अनुरूप हों। इनके साथ ही वनों से कुछ अन्य उत्पाद माईनर फॉरेस्ट प्रोडयूस (एम.एफ.पी.) भी प्राप्त होते हैं जैसे-जड़ें, छाल, पत्तियां, फूल और फल। इनकी प्रोसेसिंग और विपणन से भी कई लोगों को रोजगार मिलता है। जड़ी बूटियों सहित इन उत्पादों में राजस्व की भी बड़ी राशि प्राप्त होती है। अत इनका उत्पादन बढ़ाने के उपाय करने की बड़ी आवश्यकत है। इन उपायों में विकास, उत्पादों को जमा करना, प्रोसेसिंग और स्तरीकरण के आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल करना शामिल है। इन कामें में जनजातीय लोगों को बड़े पैमाने पर शामिल करने की भी बड़ी जरूरत है। यह सुनिश्चित करना होगा कि ये भोले-भाले जनजातीय लोग हमेशा मजदूर ही न रह जाएं बल्कि वन-आधारित अर्थव्यवस्था में सक्रिय भागीदार बनें।

वन और लट्ठों के क्षेत्र (x) और लकड़ी के उत्पाद और फर्नीचर आदि (y) में 1970-71 के मूल्यों पर सकल मूल्य योग (ग्रौस वेल्यू एंडेड) की वृद्धि दर निम्न तालिका से पता चलती है :–

सकल मूल्य योग में वृद्धि (प्रतिशत में)
(1970-71 के मूल्यों पर)

वर्ष	वनोत्पाद	लट्ठे आदि	लकड़ी/लकड़ी के उत्पाद/फर्नीचर आदि
1971-72	-4.4		4.1
1972-73	6.0		3.1
1973-74	2.8		-5.2
1974-75	1.9		15.9
1975-76	2.8		2.0
1976-77	-3.3		-2.1
1977-78	11.5		1.8
1978-79	5.4		1.8
1979-80	-8.9		-7.0
1980-81	-6.6		-8.3
1981-82	2.9		6
1982-83	-10.6		-9.4
1983-84	-7.4		-6.0
1984-85	2.7		2.9

14 वर्षों में मूल्य योग (वेल्यू एडेड) में वृद्धि के आंकड़ों के अनुसार सह संबंध गुणांक (r) 0.79 बनता है। एक प्रतिशत लेवल आफ सिग्नीफिकेन्स पर यह काफी महत्वपूर्ण है। इस आधार पर रिग्रेसन अनुपात निम्न है—

$$y=0.93\ x=1.21$$

सातवीं योजना अवधि में लकड़ी और लकड़ी के उत्पादों (y) से मूल्य योग की अनुमानित वृद्धि दर 5.3 प्रतिशत है। हमारे आकलन के अनुसार वानिकी और लट्ठों से (y) सकल मूल्य योग की वृद्धि दर 4.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष होनी चाहिये। इस आधार पर 1988-89 वित्त वर्ष के दौरान वानिकी और लट्ठों के क्षेत्र से मूल्य योग 3 अरब 31 करोड़ रुपये (1970-71 के मूल्यों पर रहना चाहिये। 1989-90 में औद्योगिक क्षेत्र की जरुरतों को पूरा कर पाने के लिए इसे 3 अरब 46 करोड़ रुपये होना चाहिये।

निश्चय ही ईंधन की लकड़ी के संरक्षण और लकड़ी-आधारित उद्योगों में वैकल्पिक कच्चा माल इस्तेमाल करने के हमारे प्रयासों के बावजूद ईंधन और उद्योग के इस्तेमाल के लिए लकड़ी का उत्पादन बढ़ाना भी जरूरी है, वहीं उद्योगों के इस्तेमाल के लिए लकड़ी का उत्पादन बढ़ाना भी जरूरी है। इसलिए औद्योगिक इस्तेमाल के लिए लकड़ी की आपूर्ति को बढ़ाने के लिए और अधिक क्षेत्र में वन लगाए जाने चाहिए ताकि मांग और पूर्ति के बीच के भारी अंतर को कम किया जा सके।

सामाजिक वानिकी का महत्व

जनसामान्य में यह गलत धारणा है कि वन सिर्फ पहाड़ी इलाकों तक सीमित रहने चाहिए और यह केवल वन विभाग के अधिकारियों की जिम्मेदारी है कि वे देश में वनों का विकास करें। निश्चय ही यह धारणा गलत है। संरक्षित वन क्षेत्र के अलावा देश में बंजर भूमि का बड़ा इलाका है और यहां पौध लगाना लोगों की जिम्मेदारी है। सामाजिक वानिकी का मूल उद्देश्य लोगों को अपनी जमीन पर और अपने ही लाभ के लिए वनों को विकसित करने की प्रेरणा देना है।

वन ऐसी सम्पत्ति है जिसका लम्बे समय तक बार-बार उपयोग हो सकता है। विवेक पूर्ण तरीके से इनका लगातार विकास किया जा सकता है। अब यह बात काफी तीव्रता से महसूस की जाने लगी है कि वनीकरण को कृषि और औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों के साथ जोड़ा जाए ताकि जिस मौसम में खेती का काम पर्याप्त नहीं होता, उसमें स्थानीय जनता को रोजगार और अपना विकास स्वयं करने के पर्याप्त अवसर मिलते रहें।

औद्योगिक विकास के लिए वन संसाधनों का उपयोग

वनों से हमें उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण कच्चा माल मिलता है। इनसे कई महत्वपूर्ण कुटीर और ग्रामीण उद्योगों के विकास में मदद मिलती है। इन छोटे उद्योगों से बड़ी संख्या में लोगों के लिए रोजगार जुटाया जा सकता है। इन कुटीर और ग्रामीण उद्योगों में स्थानीय लोगों को शामिल करके इनका विकास करने की बड़ी आवश्यकता है।

भारत में मिलने वाले वन उत्पादों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है:—

1. लकड़ी :— विभिन्न तकनीकी गुणों वाली अनेक प्रकार की लकड़ी का इस्तेमाल इमारतें बनाने में किया जाता है। इसके अलावा पैकिंग के लिए बक्से, प्लाईवुड और कागज की लुगदी जैसे उद्योगों में लकड़ी मुख्य कच्चे माल के रूप में प्रयोग की जाती है।

2. अन्य उप-उत्पाद :—भारतीय वनों से बांस, घास, गन्ना, रंगाई का सामान, हरीताकी, टसर, पान की पत्तियां, लाख, लीसा, तारपीन का तेल और जड़ी-बूटियों जैसे कई उप-उत्पाद प्राप्त होते हैं।

कुटीर और ग्रामीण उद्योगों में वनों का योगदान

वन कई ग्रामीण और कुटीर उद्योगों में सहायक हो सकते हैं। लाख, मधुमक्खी पालन, बीड़ी, टोकरियां और रस्सियां बनाना, रेशम आदि उद्योगों के विकास के लिए भी पेड़ लगाना जरूरी है। इनसे स्थानीय लोगों को लाभप्रद रोजगार मिल सकता है। गांवों की बंजर जमीन, नदियों द्वारा छोड़ी गई किनारे की जमीन, तालाबों और झीलों के किनारे और फसल के लिए प्रयोग न होने वाले अन्य इलाकों पर झरबेरी उगाई जा सकती है। इससे रेशम तैयार करने के काम में मदद मिलेगी और गांवों के लोगों को रोजगार मिलेगा।

टसर का उत्पादन बढ़ाने जैसे कुटीर उद्योग से भी ग्रामीण लोगों का जीवन स्तर सुधर सकता है। लाख उत्पादन भी महत्वपूर्ण वनाधारित उद्योग है। इसमें विकास की बड़ी संभावनाएं हैं। लाख का उपयोग वार्निश, छपाई, सील करने के लिए और ग्रामोफोन के रिकार्डों में किया जाता है।

लीसा भी बड़ा महत्वपूर्ण वनाधारित उद्योग है। इसे चीड़ के वृक्षों से निकाला जाता है। इससे तारपीन का तेल भी बनता है।

हरीताकी रंगाई दवाओं और वस्त्रों जैसे कई उद्योगों में काम में लाई जाती हैं। सिनकोना के वृक्षों से कुनीन जैसी महत्वपूर्ण औषधि प्राप्त होती है। खजूर के वृक्षों से शीरा और ताड़ी प्राप्त होती है।

इनके अलावा वनों से कुटीर उद्योगों के विकास के लिए और भी महत्वपूर्ण चीजें मिलती हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में चंदन की लकड़ी कई प्रकार के तेल औषधियां, गन्ना, चटाईयों के लिए कच्चामाल और शहद जैसे वनोत्पाद प्राप्त होते हैं। अगर इन उद्योगों का क्रमबद्ध,सुसंगठित, योजनाबद्ध तरीके से उत्साह के साथ विकास किया जाए तो इस बात में कोई संदेह नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या का कारगर तरीके से मुकाबला किया जा सकेगा।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि वानिकी और ग्रामीण विकास के बीच घनिष्ठ सम्बंध हैं क्योंकि देश के तीन चौथाई लोग गावों में रहते हैं। यह बात भी निश्चित रूप से कही जा सकती है कि वनों का अच्छे तरीके से विकास करने से गांवों के लोगों का जीवनस्तर सुधारा जा सकता है और आसानी से छले जाने वाले भोले-भाले लोगों की कई प्रकार से मदद की जा सकती है। वन न केवल पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं बल्कि इनसे गांवों में रोजगार भी जुटाया जा सकता है। गांवों में मजदूरी के आधार पर रोजगार जुटाने के साधन बहुत कम हैं। वानिकी कार्यक्रम श्रम केन्द्रित हैं इसलिए इनसे बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। अगर गांवों के गरीब और पिछड़े लोगों को सक्रिय रूप से भागीदार बनाकर कुटीर और लघु उद्योगों का विकास किया जाए और साथ ही बिक्री की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं तो निश्चित रूप से वानिकी गांवों की समृद्धि और उनके बदलाव की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

अनुवाद : राजेन्द्र भट्ट
द्वारा, श्री ए.एन. पंत
14/192, मालवीय नगर,
नई दिल्ली

पृष्ठ 14 का शेष

विकास के ढांचे में सचिव (ग्रामीण विकास),विकास-आयुक्त वित्त तथा योजना विभागों सहित राज्य स्तर के सभी संगठनों के अधिकारियों की एक तिमाही समीक्षा बैठक बुला सकता है। वर्ष में कम से कम एक बार इन बैठकों में इस विभाग के सम्बन्धित क्षेत्र अधिकारी को भी जाना चाहिए। यह भी सुझाव है कि राज्य-स्तर की बैठकों की अध्यक्षता राज्य के ग्रामीण विकास मंत्री को करनी चाहिए।

6. राज्य के अन्य विभागों द्वारा निगरानी तथा मूल्यांकन

ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों की स्वतन्त्र और निष्पक्ष निगरानी तथा मूल्यांकन के लिए वित्त विभाग के सहयोग से राज्य के योजना बोर्ड अथवा आर्थिक तथा सांख्यिकीय संगठन की अनौपचारिक रूप से सेवाएं ली जा सकती हैं। राज्य स्तर पर स्वतन्त्र निगरानी करने के लिए एक स्वतन्त्र निगरानी प्रकोष्ठ बनाना होगा जोकि या तो राज्य के ग्रामीण विकास विभाग के अधीन अथवा योजना बोर्ड/आर्थिक तथा सांख्यकीय संगठन के अन्तर्गत कार्य करेगा।

7. राष्ट्रीय स्तर पर निगरानी

राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण विकास विभाग द्वारा क्षेत्र-अधिकारियों और समवर्ती मूल्यांकन के माध्यम से कार्यक्रमों की निगरानी की जा रही है और जहां तक 20 सूत्री कार्यक्रम के सूत्र संख्या 5 और 7 का सम्बन्ध है, उनकी निगरानी कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रायय द्वारा की जाती है। ग्रामीण विकास विभाग का वर्तमान निगरानी प्रकोष्ठ पर्याप्त नहीं है तथा इसे और अधिक मजबूत बनाने की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ इस विभाग के क्षेत्र अधिकारियों को, जब वे अपने-अपने राज्यों के दौरे पर जाएं, तो उन्हें मौकों पर जाकर निगरानी करने का काम भी सौंपा जाना चाहिए।

कोई भी प्रभावशाली और लाभप्रद निगरानी प्रणाली को लागू करने और उसे अमल में लाने से पहले उस पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई जाए जिसमें योजना आयोग, कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, स्वयं सेवी संगठन और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि तथा विशेषज्ञ हों जिसके परिणामस्वरूप निगरानी को सरल और कारगर बनाया जा सकेगा।

अनुवाद: किरण गुप्ता
IV/1611, भोलानाथ नगर,
शाहदरा - दिल्ली-110032

वानिकी कार्यों में महिलाएं पुरुषों से कहीं अधिक आगे

स्वाति तिवारी

महिलाएँ पर्यावरण में पौधे रोपित करते हुए

मध्य प्रदेश के खरगोन जिले में ग्रामीण महिलाओं में सामाजिक वानिकी कार्यों के प्रति जागरूकता, उत्साह और रुचि देखने को जो मिली है वैसी जागृति तो इस प्रदेश में तो क्या शायद देश के किसी भी स्थान पर देखने को न मिले।

ये शब्द मेरे या वन विभाग के किसी अधिकारी या खरगोन के किसी निवासी के नहीं वरन भारत सरकार के राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान के दो वानिकी विशेषज्ञों डा. डी. सेन और श्री ए.जी. पुरंदरे के हैं, जो इस जिले में सफल वानिकी कार्यों का अवलोकन करने आए थे। ये दोनों विषयविद् वानिकी के विभिन्न कार्यों का विश्लेषण और अध्ययन करने के लिए देश के आठ राज्यों का दौरा कर रहे हैं और उन्होंने राज्य प्रशासन की सलाह पर मध्य प्रदेश में खरगोन जिले को इसके लिए चुना है।

खरगौन जिले में वानिकी कार्यों में महिलाओं का आगे आना तथा महिला मण्डल बनाकर सामूहिक रूप में कार्य करना एक विशिष्ट एवं प्रेरणादायी उपलब्धि है। जिले में गोगावां विकास खण्ड में नागझिरी की 26 महिलाओं ने वर्ष 1984 में सामाजिक वानिकी कार्यों में सार्थक भागीदारी निभाने का कार्य उस समय शुरू किया जब उन्होंने उस वर्ष खरगोन में हुए पंच सरपंच प्रशिक्षण शिविर में भाग लिया। शिविर में बताई गई वानिकी बातों से प्रेरित होकर इन महिलाओं ने एक महिला मण्डल का विधिवत गठन किया। उसी वर्ष वर्षा ऋतु में ही इस महिला मण्डल ने ग्राम

नागझिरी पंचायत से ग्राम की एक हैक्टेयर पड़त भूमि प्राप्त कर वानिकी वन मण्डल खरगोन के सहयोग से महिला फलोद्यान लगाया। इस भूमि में गड्ढे बनाकर उसमें आम, जामुन, आंवला, सीताफल, बेर, इमली, चीकू, नीबू, अमरूद आदि के 746 पौधे रोपित किए। इस फलोद्यान की सुरक्षा, देखरेख, निराई गुडाई तथा सिंचाई आदि की जवाबदारी इन महिलाओं ने ली और समय-समय पर इस कार्य को सुचारू रूप से संचालित किया। परिणामस्वरूप आज इनमें से अधिकांश पौधे जीवित हैं और उनकी अच्छी वृद्धि हो रही हैं। इन महिलाओं के उत्साह, रुचि और परिणाममूलक कार्यों को देखते हुए वनमण्डल ने वर्ष 85-86 में इन्हें निजी रोपणी दी जिसमें महिलाओं ने 25-25 हजार पौधे तैयार किए। इससे महिला मण्डल को करीब 17 हजार रुपये की आय हुई। ग्राम की इन महिलाओं की दो वर्षों की कार्यों की प्रगति और उत्साह को देखकर ग्राम की कुछ अन्य महिलाओं ने अलग से एक युवा महिला मण्डल बनाया है। ये महिलाएं भी आगे आकर वानिकी कार्यों में रुचि ले रही हैं। इस वर्ष इन दोनों मण्डलों को 25 हजार पौधे निजी रोपणी लगाने हेतु दिए गए हैं। इससे उन्हें अनुदान के रूप में दस हजार रुपये प्राप्त हुए हैं। महिला मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती गोगलबाई और युवा महिला मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती अन्नपूर्णा बाई ने चर्चा के दौरान बताया कि उन्होंने मण्डल को प्राप्त हुई आय को फिलहाल बैंक में जमा किया है। इस धन को वे मण्डल के नवीन भवन निर्माण या अन्य किसी रचनात्मक कार्य में खर्च करेंगे। मण्डल को इस वर्ष आवश्यक सामग्री आदि खरीदने के लिए जनसंपर्क निधि से पांच हजार रुपये प्राप्त हुए हैं। जब महिला मण्डल की सदस्यों से पूछा गया कि वे निजी रोपणी में तैयार होने वाले पौधों का क्या उपयोग करेंगे तो उन्होंने बताया कि सभी महिलाएं कृषक परिवार से संबंधित हैं। वे इन पौधों को अपने खेतों की मेड़ों और पड़त भूमि में रोपित करेंगी और बचे हुए पौधों को ग्रामवासियों में वितरित कर उन्हें प्रदेश वानिकी के लिए प्रेरित करेंगी। इन महिलाओं ने बताया कि वे एक ओर जहां वृक्षों को विकसित हो रहे पौधों की सुरक्षा का कार्य कर रही हैं वहीं दूसरी ओर एक अभियान चलाकर खुद और ग्रामवासियों को भी नए पौधों को लगाने की प्रेरणा देती हैं। महिला मण्डल की सदस्याएं अभी तक अपने खेतों की मेड़ों और पड़त भूमि पर करीब पांच हजार पौधे लगा चुकी हैं और उसकी सुरक्षा और देखरेख भी कर रहीं हैं।

वानिकी महिला मंडल की सदस्याएं निजी रोपणी में कार्यरत

वानिकी महिला मंडल की एक सदस्य पौधों को सींचते हुए।

इस ग्राम में नया युवा महिला मण्डल बनना इस बात का द्योतक है कि महिलाओं में "हरियाली से खुशहाली" लाने का सरकारी संदेश पहुंच रहा है। इस मण्डल में 30 युवा उत्साही महिलाएं हैं। इन महिलाओं ने इस वर्ष ग्राम की सामुदायिक पड़त भूमि पर तीन हैक्टेयर क्षेत्र में वानिकी मण्डल के सहयोग से महिला वन लगाया है। वानिकी मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती अन्नपूर्णाबाई ने चर्चा के दौरान बताया कि इस तीन हैक्टेयर क्षेत्र में से एक हैक्टेयर में फलदार, एक हैक्टेयर में शोभादार तथा एक हैक्टेयर में जलाऊ तथा इमारती पौधे लगाए गए और इसकी पूरी सुरक्षा हमारे मण्डल की सदस्याएं ही कर रही हैं। सामाजिक वानिकी, खरगोन के वनमंडलाधिकारी श्री ए.एच. कुरैशी ने इस संबंध में बताया कि ग्राम नागझिरी की महिलाओं की प्रेरणा से पास ही के ग्राम पिपराटा की 13 महिलाओं ने भी एक मण्डल का गठन किया है और ये महिलाएं निजी रोपणी के माध्यम से 10 हजार पौधे तैयार कर रही हैं। इसके अलावा आदिवासी बाहुल ग्राम गाडाघाट की आदिवासी महिलाओं का वानिकी कार्यों के प्रति रुझान इस योजना की स्तुत्य उपलब्धि है। इस ग्राम की 18 आदिवासी महिलाओं ने श्रीमती सैतुलबाई की अध्यक्षता में इस वर्ष महिला मण्डल का गठन किया है और इन महिलाओं का वानिकी कार्यों के प्रति उत्साह देखते बनता है। इन आदिवासी महिला मण्डल द्वारा लगाई गई निजी रोपणी में इस वर्ष 20 हजार पौधे तैयार हुए हैं। इन महिलाओं ने ग्राम की एक हैक्टेयर पड़त भूमि में इस वर्ष की वर्षा ऋतु में अमराई (निकुंज) लगाई है। इस हेतु स्थल का चयन कर पशुरोधी खाई, गड्ढे आदि तैयारियां स्वयं महिलाओं ने श्रम करके की है।

इस प्रकार, इन ग्रामों की महिलाओं ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि वानिकी कार्यों में पुरुषों से महिलाएं कहीं अधिक आगे हैं। इन महिलाओं की वानिकी कार्यों के प्रति गहरी रुचि और जागृति न सिर्फ मध्य प्रदेश वरन देश की अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणादायी है। देश के प्रसिद्ध वानिकी विशेज्ञ डा. डी. सेन ने नागझिरी की ग्रामीण महिलाओं से चर्चा करने के बाद और उनकी वानिकी कार्यों में रुझान देखने के बाद कहा है कि वानिकी गतिविधियों के लिए नागझिरी ग्राम का उपयोग एक आदर्श ग्राम के रूप में किया जाना चाहिए और देश के अन्य स्थानों के महिला-पुरुषों को वानिकी कार्यों के लिए प्रेरित करने के वासते यहां लाकर ये सफल कार्य दिखाने चाहिए। जिले की महिलाओं की वानिकी कार्यों के प्रति सक्रिय और सार्थक भागीदारी इस जिले के लिए एक उत्कृष्ठ एवं प्रेरणादायी उदाहरण है। ये महिलाएं "हरियाली से खुशहाली" का संदेश एक सैलाब के रूप में न सिर्फ, निमाड में वरन पूरे प्रदेश व देश में पहुंचा रही हैं जो एक स्तुत्य वंदनीय और राष्ट्रहित का कार्य है।

द्वारा, श्री सुरेश तिवारी,
सहायक संचालक, जनसंपर्क,
आफिसर्स कालोनी, खरगोन 451001

ग्रामीण विकास में कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्व

सचिन शर्मा

भारतीय कुटीर एवं लघु उद्योगों का अतीत अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। ढाका की मलमल, बनारस की साड़ियां, कश्मीर के शाल, धातु की मूर्तियां आदि विश्व-प्रसिद्ध वस्तुएं इन्हीं कुटीर धन्धों की देन हैं। हमारे कुटीर उद्योग धन्धों द्वारा निर्मित माल विदेशों में भेजा जाता था। जिस समय यूरोप के देश पिछड़ी हुई अवस्था में थे, उस समय भारतीय कलात्मक वस्तुओं का विश्व के विभिन्न भागों में सम्मान किया जाता था। ये वस्तुएं शहर की किसी फैक्टरी में नहीं वरन् भारतीय गांवों में निर्मित होती थीं। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि हम कुटीर उद्योग एवं लघु उद्योगों के विषय में जानें, विशेषकर ग्रामीण विकास के लिए।

ब्रिटिश काल में स्थिति

हिन्दु तथा मुगलकाल में तो राजाओं एवं नवाबों के प्रोत्साहन से कुटीर उद्योग-धन्धे पनपते रहे, परन्तु जबसे ईस्ट इण्डिया कंपनी का भारत में प्रवेश हुआ, हमारे कुटीर उद्योगों की अवनति होने लगी। इस पतन के कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार हैं – ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में व्यापारिक शक्ति के साथ ही राजनैतिक सत्ता आ जाने से भारतीय राजा तथा नवाब, जो कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देते थे, उनकी हालत केवल नाममात्र ही प्रमुख रह गई थी जिससे कुटीर एवं लघु उद्योगों का पतन हुआ। इस समय एक नया वर्ग-सामन्तवादी वर्ग बना जो भारतीय वर्ग होते हुए भी भाषा, रहन-सहन आदि में अंग्रेजों की नकल करने में अपना गौरव समझते थे। अंग्रेजों ने कुटीर एवं लघु उद्योगों को नष्ट करने के लिए एवं अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए अपना माल भारतवासियों के सिर पर बलात् थोपा। इसके अतिरिक्त उन्होंने इंग्लैंड में यह कानून बनाया कि जो भी व्यक्ति भारतीय सामान का उपयोग करेगा वह दंडित किया जाएगा। भारतीय शिल्पियों को भी चारों और से कड़े नियन्त्रण में रखा गया। अंग्रेजों ने रेल, सड़क-परिवहन, जहाज आदि यातायात के साधनों का प्रयोग भी अंग्रेजी माल को भारत में खपाने के उद्देश्य से किया, जिससे भारतीय कुटीर एवं लघु उद्योगों में निर्मित माल अंग्रेजी मशीनों की बनी वस्तुओं से प्रतियोगिता में टिक न पाया और इनका पतन होने लगा।

परन्तु प्रतिकूल अंग्रेजी नीति के बावजूद ये अपने अस्तित्व को टिकाने में सफल हुए। इसके पीछे जिन परिस्थितियों का योगदान रहा वह इस प्रकार हैं। कुछ व्यक्तियों को ये उद्योग पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिलते हैं, अर्थात् जिस उद्योग में उनके पिता लगे होते हैं, वही काम वे भी करने लगते हैं। कुछ कुटीर उद्योगों के लिए जाति प्रथा ने भी योगदान दिया। जैसे - तेली, कुम्हार, बड़ई आदि। कुछ ऐसे भी कुटीर उद्योग हैं जिनके द्वारा किया जाने वाला उत्पादन आधुनिक कारखानों में नहीं हो सकता था, जिसके कारण कुटीर एवं लघु उद्योगों का अस्तित्व बना रहा। कुछ कुटीर उद्योगों को स्वदेशी आन्दोलन में काफी प्रोत्साहन दिया गया जैसे खादी उद्योग – जिसके कारण कुटीर एवं लघु उद्योगों पर अंग्रेजी नीति के कुठाराघात के बावजूद यह अपना अस्तित्व नहीं खो पाया।

आशय

कुटीर एवं लघु उद्योगों के ग्रामीण विकास में महत्व पर प्रकाश डालने से पहले यह आवश्यक है कि हम इनका अर्थ जान लें।

लघु उद्योग वे हैं जिनमें बड़े उद्योगों की अपेक्षा कम मात्रा में भूमि, पूंजी एवं साहस का उपयोग होता है। इसमें आधुनिक यान्त्रिक प्रणाली के आधार पर छोटे पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

भारतीय औद्योगिक आयोग ने ऐसे उद्योगों को कुटीर

उद्योग बताया है जिन्हें श्रमजीवी अपने घरों में चलाते हैं और जिनके कार्य का आकार छोटा तथा स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए होता है। इस सम्बन्ध में विद्युत शक्ति का प्रयोग करना अथवा न करना कोई महत्व नहीं रखता।

प्रकार

कुटीर एवं लघु उद्योगों का वर्गीकरण निम्न सारणी द्वारा दर्शाया जा सकता है–

कुटीर एवं लघु उद्योग

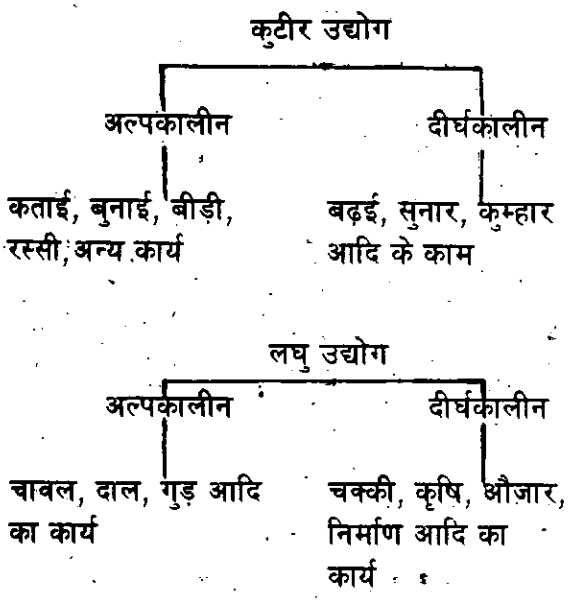

महत्व

कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्व मुख्यतः कृषकों को सहायक आय प्रदान करने तथा देश की परम्परागत कला की रक्षा करने की दृष्टि से बताया जाता है। इसके अलावा अनेक और भी तर्क हैं जिनके आधार पर लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व स्पष्ट होता है।

ग्रामीणों के पास, जो पूर्णतया कृषि पर आधारित होते हैं, पूंजी का अभाव रहता है, जबकि यहां जनशक्ति का बाहुल्य है। ऐसी स्थिति में बड़े स्तर पर उद्योग स्थापित करना सम्भव नहीं है। कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत थोड़ी पूंजी का विनियोग करके अधिक काम किया जा सकता है, अधिक लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। इतना ही नहीं, जो ग्रामीण स्त्रियां घरों से नहीं निकलतीं और खाली रहती हैं, वे घरों में ही लाभकारी धन्धों में काम करके पैसा कमा सकती हैं। हमारे किसानों के पास वर्ष में पांच महीने कोई काम नहीं होता। वे कुटीर एवं लघु उद्योगों में काम करके अर्ध-रोजगार की स्थिति से बच सकते हैं और अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। बहुत से घरेलू धन्धे तो ऐसे होते हैं जो उनके जीवन से बहुत सम्बन्धित होते हैं, तथा किसान और उनके पशुओं के स्वास्थ्य को बना सकते हैं। जैसे – डेरी खोलना, तेल निकालना, मुर्गी पालन आदि। इससे केवल ग्रामीणों का जीवन-स्तर ही ऊँचा नहीं होगा, अपितु ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक दशा भी ठीक हो जाएगी। भारत की उन्नति वास्तव में इसके गाँवों में ही निहित है।

बहुत से ग्रामीण अज्ञानतावश अपने धन को जमीन में गाड़ कर रखते हैं। घरेलू धन्धों में यह धन वहां से निकलकर पूंजी का रूप धारण करेगा जो देश के लिए एक सौभाग्य की बात होगी। इससे पूंजी की कुशलता और गतिशीतला में वृद्धि होती है। किसी भी देश को बहुमुखी उन्नति के लिए कुटीर धन्धों की शरण लेनी ही पड़ती है। बड़े-बड़े उद्योगों द्वारा देश का समान औद्योगिक विकास संभव नहीं है। वर्तमान समय में संगठित उद्योगों का केन्द्रीकरण किंचित नगरों में ही है। परन्तु जब देश में कुटीर एवं लघु उद्योगों का जाल फैल जाएगा तो कोई कारण नहीं कि गांवों की उन्नति न हो। बड़े उद्योगों के द्वारा राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग केवल कुछ हाथों में ही केन्द्रित हो जाता है और आय का समान वितरण नहीं हो पाता। परन्तु गांवों में कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने से ही यह असमानता काफी सीमा तक दूर की जा सकती है।

औद्योगिक केन्द्रीकरण का सबसे बड़ा दोष यह है कि एक विशेष स्थान पर यदि कोई विध्वंसक स्थिति उत्पन्न हो जाए तो उस स्थान के समस्त उद्योग नष्ट हो जायेंगे। अतः विकेन्द्रीकरण के इस कार्य में कुटीर उद्योगों द्वारा ही सबसे अधिक सहायता मिल सकती है क्योंकि भारत में गांवों का वितरण प्रायः समान है। यदि कुटीर एवं लघु उद्योग विकसित होंगे तो केन्द्रीकरण की समस्या हल होगी ही, साथ में समस्त भारत का समान औद्योगिक विकास सम्भव हो सकेगा। इसके अतिरिक्त शहरीकरण के दोषों से बचा जा सकता है क्योंकि बड़े उद्योगों से शहरीकरण को बढ़ावा मिलता है जिससे आवास, परिवहन की समस्या एवं नैतिक पतन की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। किन्तु जब गांवों में कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा ग्रामीण व्यक्तियों को अपने यहां पर ही काम-धन्धा उलपब्ध होगा तो वे शहरों की ओर क्यों जाएंगे। वे गांवों में रहकर ही ग्रामीण स्तर को ऊंचा उठाने में कार्यरत होंगे। इस प्रकार कुटीर और लघु उद्योगों का ग्रामीण विकास के लिए काफी महत्व है, इसके विकास हेतु हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए।

समस्याएँ

विभिन्न बातों के आधार पर यह कहा गया है कि कुटीर एवं लघु उद्योगों का ग्रामीण विकास में काफी महत्व है। आवश्यकता इस बात की भी है कि इनके रास्ते में जो समस्याएं या कठिनाइयां हैं उनकी जांच की जाए एवं उनको सुनियोजित ढंग से दूर करने का समुचित प्रयास किया जाए। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

सर्वप्रथम, इन्हें पर्याप्त मात्रा में बढ़िया किस्म का कच्चा माल समयानुसार उचित कीमत पर नहीं मिल पाता। मिल उद्योगों के ऐजेन्ट बढ़िया कच्चा माल पहले ही खरीद लेते हैं। गरीब कारीगरों को साधन और संगठन के अभाव में उनसे प्रतिस्पर्धा करना कठिन होता है। यह भी देखा जाता है कि गांव में रहने वाले गरीब एवं असहाय उद्यमियों को सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधायें असन्तोषजनक ही हैं। वह अपने उद्योग के लिए ग्रामीण साहूकारों की ही शरण में जाता है, जहां उसे अधिक व्यय तथा घाटा उठाना पड़ता है। आमतौर से इनके उत्पादन के तौर-तरीके और साज-समान पुराने और घटिया किस्म के होते हैं। अभी तक हमारे वैज्ञानिक लघु व कुटीर उद्योगों पर विशेष प्रभाव नहीं जमा सके हैं। इससे एक तो उत्पादन कम होता है और दूसरे जो चीजें तैयार होती हैं वे भी पुराने ढंग की और घटिया किस्म की होती हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश कुटीर कारीगर साधारण लिखना-पढ़ना भी नहीं जानते, अशिक्षा के कारण वे समरूप तथा उच्चकोटि का माल तैयार नहीं कर पाते। माल तैयार करने के पश्चात् संगठित बाजार के अभाव में हमारे ग्रामीण कारीगरों को अपनी वस्तुओं के विक्रय के लिए स्वयं इधर-उधर घूमना पड़ता है जिससे समय की हानि होती है। विक्रय संस्था न होने के कारण कारीगरों के लाभ का एक बहुत बड़ा भाग मध्यस्थों के हाथ में चला जाता है क्योंकि अधिकतर माल हाथ से बनाया जाता है जिसमें श्रम गहन पद्धति का प्रयोग किया जाता है। अतः उनमें प्रति इकाई लागत अधिक होती है जिससे उनका मूल्य भी ऊंचा होता है। मूल्य ऊँचा होने के कारण इनकी माग कम होती है। जनता में उदार भावना का अभाव होने के कारण ऐसे व्यक्ति भी हैं जो कुटीर निर्मित वस्तुओं की अपेक्षा मिल निर्मित वस्तुओं को प्राथमिकता देते हैं। इससे कुटीर उद्योगों को गहरा धक्का लगता है। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त निम्न समस्याएं भी हैं। जैसे – यातायात की समस्या, संचार साधनों का अभाव विद्युत, जल, विज्ञापन आदि जिनके कारण कुटीर उद्यमी अपने हस्त कौशल पर आधारित कुटीर उद्योगों से विमुख होते जा रहे हैं और इनके परिवार से सम्बन्धित ग्रामीण युवा पीढ़ी इन कार्यों को निम्न स्तर का कार्य समझ रही है।

समाधान

किसी भी समस्या पर वर्णन तब तक अधूरा है जबकि उसके समाधान का रास्ता न सुझाया जाए। अतः हम निम्न समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि इस ओर ध्यान दिया जाए तो कोई कारण नहीं कि इन कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा ग्रामीण विकास द्रुत गति से न हो। ये कुछ महत्वपूर्ण समाधान इस प्रकार हैं–

कुटीर एवं लघु उद्योगों के लिए कच्चे माल, पूंजी की सामयिक पूर्ति हेतु राज्य के उद्योग विभाग तथा विकास अधिकारियों का उत्तरदायित्व होना चाहिए। पूंजी की पूर्ति के लिए सहकारी बैंकों की स्थापना की जानी चाहिए जो शिल्पकारों को अल्प तथा मध्यकालीन ऋण दे सकें। शिक्षा का प्रसार करके नवीन प्राविधियों का लाभ शिल्पकारों को बताया जाए। कुटीर एवं लघु उद्योगों के लिए पर्याप्त विज्ञापन तथा प्रचार की व्यवस्था होनी चाहिए तभी इसकी बिक्री बढ़ सकेगी तथा इनके विकास की गति बढ़ सकेगी। इन उद्यमियों को प्रारम्भ में सरल उपकरण दिए जायें तथा धीरे-धीरे आधुनिक यन्त्रों का प्रशिक्षण दिया जाए। लघु उद्योगों की उत्पादकता, उत्पादन क्षमता एवं किस्म सुधार करने की दृष्टि से अनुसंधान पर बल दिया जाए। कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित माल का निर्यात बढ़ाने के लिए हर सम्भव सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

पंचवर्षीय योजनाएं

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही देश में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास पर बहुत बल दिया गया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कुटीर एवं लघु उद्योगों पर किए गए व्यय का विवरण कुछ इस प्रकार है–

पहली पंचवर्षीय योजना में कुटीर व लघु उद्योगों के विकास के लिए लगभग 34 करोड़ रुपये केन्द्र सरकार ने तथा लगभग 8 करोड़ रुपये राज्य सरकारों ने व्यय किए। दूसरी योजना में 187 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इसमें चरखे के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया गया। तीसरी योजना में इन उद्योगों के लिए 241 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस पंचवर्षीय योजना में भी हथकरघा उद्योग पर बल दिया गया। इसके उपरान्त

तीन वार्षिक योजनाओं, 1976-77, 1977-78 तथा 1978-79 में कुटीर व लघु उद्योगों पर क्रमशः 45 करोड़, 44 करोड़ तथा 41.4 करोड़ रुपये खर्च किए गए। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कुटीर तथा लघु उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया। इस काम में 254 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इसमें कृषि पर आधारित उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में 510 करोड़ रुपये खर्च किए गए। छठी पंचवर्षीय योजना में 1,500 करोड़ व्यय किए गए एवं सातवीं योजना में, जो 1990 तक के कार्यकाल की है, 2,753 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। आशा है कि इस योजना काल में लघु तथा कुटीर उद्योगों पर ग्रामीण विकास के लिए समुचित ध्यान दिया जाएगा और इन उद्योगों की उन्नति भविष्य में अवश्य होगी।

हमारे कुछ कुटीर एवं लघु उद्योग

हथकरघा उद्योग को राष्ट्रीय वस्त्र नीति तथा छठी पंचवर्षीय योजना में अत्याधिक महत्व दिया गया है। नए बीस सूत्री कार्यक्रम में भी उच्च प्राथमिकता दी गई है।इसनेनिर्यात के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त करते हुए 1984-85 (जनवरी) तक 278.44 करोड़ रुपये मूल्य के वस्त्रों का निर्यात किया जबकि 1967-68 में केवल 11 करोड़ 60 लाख रुपये का निर्यात हुआ था। इस प्रकार विदेशी मुद्रा का अर्जन काफी मात्रा में हुआ।

हस्तशिल्प उद्योग की श्रेणी के उद्योग हैं – वस्त्रों की छपाई, गलीचे तथा कालीन का निर्यात, लकड़ी, धातु का सामान, खिलौने, जेवर आदि। 1984-85 में दस्तकारी की वस्तुओं का निर्यात बढ़कर 1699.67 करोड़ रुपये का हो गया था। हस्तशिल्प एवं कला कौशल की वस्तुओं के उत्पादन के लिए भारत प्राचीन काल से ही विश्व प्रसिद्ध रहा है।

रेशम उद्योग में लगभग 16 लाख लोग पूर्ण या आंशिक रोजगार में लगे हुए हैं। वर्ष 1983-84 में 1,350 करोड़ रुपये की रेशम की वस्तुओं का उत्पादन भी किया गया। इससे 50 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा भी प्राप्त हुई है।

नारियल उद्योग में उत्पादन का अधिकतर भाग केरल से प्राप्त होता है। नारियल जटा से बोरा, रस्सी, सोफों के गद्दे आदि बनाए जाते हैं। इसमें 5 लाख से भी अधिक व्यक्ति रोजगार में लगे हुए हैं।

खादी ग्रामोद्योग एक अन्य महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग है। इसके अन्तर्गत अनेक उद्योग आते हैं। उदाहरणार्थ – साबुन उद्योग, चर्म उद्योग, मधुमक्खी पालन, तेल उद्योग आदि। इस उद्योग में महिलाएं भी काफी संख्या में लगी हुई हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यदि अवसर एवं पूर्ण सुविधाएं दी जाएं तो सम्भव है कि कुटीर उद्योग एवं लघु उद्योग ग्रामीण क्षेत्र में भयंकर गरीबी, अशिक्षा एवं बेरोजगारी को दूर करने में सक्षम हो सकेंगे जिससे ग्रामीण विकास द्रुत गति से सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार इन उद्योगों से केवल गांवों को ही नहीं वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकेगा। अतः इन्हें उपेक्षित नहीं रखा जाना चाहिए।

1/7610, गली नं. 6
ईस्ट गोरख पार्क
शाहदरा, दिल्ली - 110032

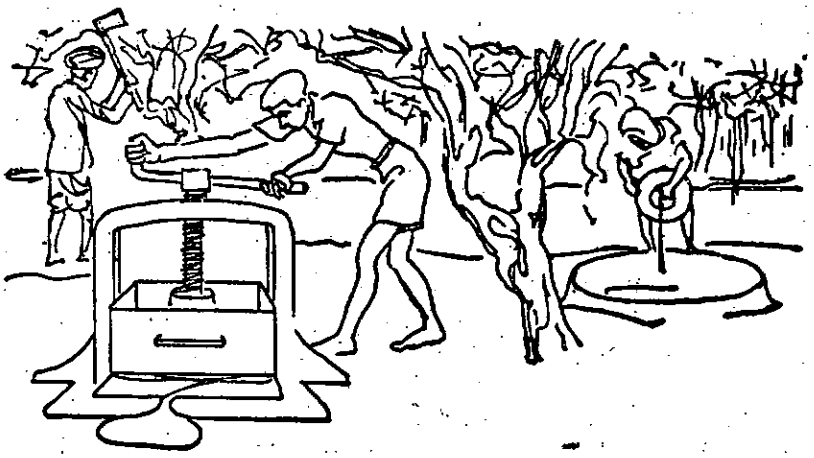

शौक बना आय का स्रोत

घनश्याम मीणा

दादाजी श्री हरिकिशन पुरोहित को अपनी उम्र के 50 वें वर्ष में एक ऐसा शौक लगा जो उनके लिए अब तक भी शौक है पर इसी शौक का लाभ उठा रहे हैं उनके बेटे-पोते। वैसे दादाजी का वह शौक ऐसा निराला नहीं जो किसी को लगा ही न हो।

दादाजी पूछने पर बतातें हैं कि मैंने 1953 में मीठे ग्वार पाठे के दो पौधे शौकिया तौर पर लगाये थे। लेकिन दो पौधों से शुरू की गयी खेती ने बीकानेर से 8 कि.मी. दूर देवीकुन्डासागर गांव में दादाजी की लगभग 3 बीघे जमीन को अब आच्छादित कर रखा है। शौक-शौक में दादाजी व परिवार को अच्छी खासी आमदनी हो रही है। इस समय बीकानेर की हरेक अच्छी सब्जी की दुकान पर दादाजी के खेत के ग्वार पाठे को सजा हुआ देखा जा सकता है। दादाजी ने अपने शौक को व्यवसाय का रूप अब से लगभग 20-25 वर्ष पूर्व ही दे दिया था। ग्वार पाठे का बीकानेर क्षेत्र में एक मात्र खेत होने के कारण बाजार में बिक्री की कोई समस्या नहीं है। जितना माल बाजार में पहुंचता है हाथों-हाथ बिक जाता है। साथ ही कई आयुर्वैदिक औषधि बनाने वाले संस्थानों को भी इसकी आपूर्ति की जाती है

अपनी जानकारी और अनुभवों के आधार पर दादाजी ने बताया कि ग्वार पाठा उदर के विकारों में बहुत लाभदायक होता है। ग्वार पाठे के सेवन से वायु रोगों से भी मुक्ति मिल सकती है। आयुर्वैदिक औषधि "कुवारी रस" ग्वार पाठे से ही तैयार की जाती है जो पेट गैस जैसी बीमारियों में लाभप्रद होती है।

दादाजी के खेत से लगभग 3 क्विंटल ग्वार पाठा प्रति दिन बाजार में आता है और इससे मौसम के दौरान प्रतिदिन लगभग 300 रुपये की आमदनी होती है।

सबसे हैरत करने वाली बात यही है कि दादाजी के खेत में कुआं नहीं है। देवीकुण्डसागर में बीकानेर राजघराने का एक बहुत पुराना तालाब है। इसी तालाब से ऊंट गाड़ी में सिंचाई का पानी लाया जाता है और जैसे तैसे सिंचाई की जाती है। इस वर्ष वर्षा की कमी की वजह से तालाब का पानी भी कम होता जा रहा है। सूखे के कारण दादाजी की आमदनी पर थोड़ा असर अवश्य पड़ा है लेकिन उनका हौसला अभी भी बुलंद है। □

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम : हमारे वन्य प्राणी; लेखक: अंकुश्री; प्रकाशक: प्रतिभा विकास, रांची; मूल्य: पंद्रह रुपये;

इस पुस्तक को पढ़कर, दो अर्थों में चिड़ियाघर की याद हो आती है एक तो याद आते हैं वे जानवर जो प्राय: चिड़ियाघर में देखने को मिल जाते हैं और जिनका इस पुस्तक में वर्णन है। और दूसरे याद आते हैं चिड़ियाघर के प्रत्येक बाड़े के आगे लगे सूचना पट्ट, जिनमें संबंधित बाड़े में रखे प्राणी के बारे में सूचना दी गई होती है। सच्चाई यही है कि इस पुस्तक में जिन बीस जानवरों के बारे में जानकारी दी गई है, वह चिड़ियाघरों के सूचना पट्टों में दिए गए संक्षिप्त विवरणों जैसी ही है।

जिन बीस जानवरों के बारे में इस पुस्तक में जानकारी दी गई है उनमें से लगभग दस ऐसे हैं जिनसे हम और हमारे बच्चे काफी परिचित हैं। यही कारण है कि इस सूचनात्मक पुस्तक में यह तो बताया गया है कि भारतीय किस्म के हाथी भारत, श्रीलंका, बर्मा और थाईलैंड आदि देशों में पाए जाते हैं, मगर भारत में ये कहां-कहां मिलते हैं, इसका कोई जिक्र नहीं किया गया है।

यदि पुस्तक में विस्तार से सूचना दी जाती तो सम्भवता यह पुस्तक और अच्छी बन जाती। उदाहरण के लिए गैंडे के बारे में लिखा है कि यह वर्षों तक जीवित रहता है। मगर कितने वर्षों तक इसका खुलासा नहीं किया गया है। हाथी दांत बहुत कीमती होते हैं। मगर उनका उपयोग कैसे किया जाये यह नहीं बताया गया। यदि होता तो पाठक को और सामग्री मिल जाती।

हर अध्याय के अंत में बच्चों के लिए संदेश देना लेखक नहीं भूला है। एक उदाहरण देखिए, "सियार को हितकारी प्राणी माना जाता है। इतना ही नहीं, इसे कानूनी संरक्षण प्राप्त है। प्राप्त भी क्यों न हो, जो हितकारी होगा उसे संरक्षण मिलेगा ही।" क्या सियार को हितकारी होने के लिए ही संरक्षण दिया गया है?

भाषा की दृष्टि से "घुटना के नीचे", "खतरा का", "चीता का पंजा", "बाल नहीं रहता" जैसे प्रयोग प्रादेशिकता के कारण क्षम्य है। अंत में यह लिखा जाना उचित है कि यह पुस्तक बच्चों के लिए ज्ञानवर्धक ही नहीं अपितु जानकारी की दृष्टि से सुगम भी है।

श्रीमती अर्चना सक्सैना
जी - 212, प्रीत विहार, दिल्ली - 110092

उपलब्धि

राजमणि पाण्डेय

आज वह बहुत प्रसन्न था। घर पहुंचते ही अपनी पत्नी के हाथ से वह पत्र पा कर उसकी खुशी का पारावार नहीं रहा। पत्र जिलाधीश महोदय के यहां से आया था। नगर समाज कल्याण समिति के वार्षिक उत्सव पर मुख्य अतिथि के रूप में अपना नाम देखकर उसके सामने पूरा अतीत सिनेमा के पर्दे की तरह खिंच गया था। हाथ में पत्र लेकर थोड़ी देर के लिए वह किसी और दुनिया में खो गया था। इसी जिलाधीश के कार्यालय में कभी वह लिपिक के लिए साक्षात्कार देने गया था और उसे रिजेक्ट कर दिया गया था। उसी दिन उसने तय कर लिया था कि वह यहां तभी आयेगा जब जिलाधीश स्वयं बुलायेंगे। अत्याधिक प्रतीक्षा करने के बाद उसने नौकरी करने का विचार ही त्याग दिया था। वह जीवन को नये ढंग से शुरू करने का विचार बनाकर अब इस सांसारिक रंगभूमि में कूद पड़ा था।

महेश, जो अब महेशप्रसाद शर्मा के नाम से जाना जाता है, एक साधारण खाते-पीते परिवार में पैदा हुआ था। बचपन से ही उसका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ था। उसके घर वाले उसे क्लेक्टर बनाना चाहते थे और यह तय करके ही उसको किसी प्रकार की कमी महसूस नहीं होने दी जाती थी। जो कुछ परिवार की हैसियत से बाहर का होता था, उसे भी यथाशक्ति पूरा करने का प्रयास किया जाता था। उसे सारी सुविधाएं प्राप्त थीं। इस बात का ख्याल हमेशा रखा जाता था कि महेश को किसी प्रकार की कमी न महसूस हो। उसकी पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था। ऐसी परिस्थिति में जीवन व्यतीत कर जब महेश ने एम.एस-सी. पास की तो उसने मास्टरी के लिए बी.एड. न करके वही प्रतियोगिता का ही रास्ता अपनाया। परन्तु कुछ परिवेश का प्रभाव और कुछ ग्रामीण वातावरण कुछ भी कहिये, या कहिये भाग्य ने साथ नहीं दिया था, या मेहनत में ही कमी रह गयी, कुछ भी कहिये वह अपने लक्ष्य पर पहुंच नहीं सका। वही महेश जिसने अध्यापक की नौकरी न करने की सोची थी, किसी भी तरह कचहरी में लिपिक बनने पर मजबूर हो रहा था। परन्तु यहां भी भाग्य ने साथ नहीं दिया और वह सिर्फ इस बात के कारण नहीं लिया गया था कि वह ज्यादा पढ़ा-लिखा है। अब की बार उसका मन पूरी तरह टूट चुका था।

वह टूटे हृदय से घर लौट रहा था। अपने गम को धुएं में उड़ाने के लिए उसने सोचा कि सिगरेट ही पी ली जाये तो थोड़ी राहत मिलेगी। मन को शायद इससे कुछ शांति ही मिल जाये। सिगरेट वाले की दुकान पर अचानक उसका ध्यान रेडियो की तरफ गया। रेडियो से 'रोजगार के नये आयाम' कार्यक्रम के अंतर्गत बताया जा रहा था कि पढ़े-लिखे लोगों के लिए सरकार बीस हजार रुपये की आर्थिक सहायता दे रही है। इतना सुनकर उसे लगा कि जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। अब वह सोचने लगा कि क्या किया जाये। यदि बीस हजार रुपये ले लूं तो उसका गांव में रहकर उपयोग कैसे किया जायेगा?

उसने घर आकर अपने पिताजी से राय ली। वे बेचारे इसमें क्या सलाह देते। उनकी सभी आशाएं महेश पर टिकी थीं पर महेश की किस्मत ने उसका साथ नहीं दिया था। उन्होंने आधे मन से हां कर दी।

अब महेश ने बीस हजार रुपये की आर्थिक सहायता से अपने ही खेत में ट्यूबवेल लगवाया तथा पम्पिंग सेट लाकर उससे गेहूं पीसने, चावल कूटने और तेल पेरने की मशीन लगाई तथा अपने खेत में मौसम के अनुसार सब्जी की बुवाई शुरू कर दी। एक साल तक उसने कठोर परिश्रम किया। वह जब सुबह-सुबह खेत में जाता तो सोचता था कि वह अपनी प्रयोगशाला में ही काम करने जा रहा है। उसने इतनी लगन से काम किया कि दो साल में ही उसका सारा सरकारी कर्ज चुकता हो गया। उसने इतने वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्था की कि सभी उसकी व्यवस्था की प्रशंसा करने लगे। जो लोग पहले कहते थे कि लड़का बड़ा हो गया है, कितना बदकिस्मत है कि पढ़-लिखकर घर बैठा हुआ है, अब वे कहने लगे थे कि घर-गांव में अब पढ़े-लिखे लोगों की बहुत आवश्यकता है।

कभी-कभी महेश को लगता कि उसकी कितनी आवश्यकता थी गांव में और वह अपने इन अनपढ़ किसानों की कितनी भलाई कर रहा है। उसे लगता था कि अब तक इधर-उधर भटकने में उसने अपनी क्षमता का कितना दुरुपयोग किया। वह तो पैदा ही एक अध्यापक के रूप में हुआ था। उसका काम ही मार्गदर्शन करना था। एक अध्यापक एक प्रशासक कैसे हो सकता था।

अब सप्ताह में एक दिन उसके यहां केवल मीटिंग होती थी जिसमें दूर-दूर के गांव के किसान भाग लेने आते थे और अपनी समस्याएं बताते थे। अब महेश की ही प्रेरणा लेकर उधर गांव के नये लड़के जो यह सोचते कि हम पढ़कर क्या करेंगे, उनके मस्तिष्क में यह बात आ चुकी थी कि जो महेश भय्या कर रहे हैं वह करने में बुराई नहीं हैं बल्कि और अच्छा ही है कि अब बड़े-बूढ़े अपने बच्चों से यह कहते नही अघाते थे कि देखो, महेश भय्या ने कैसी उन्नति की है। वह अपने माता-पिता की सेवा भी कर रहा है, अपने घर में है और बाहर के लोग भी उससे मिलने आते हैं। अब तुम भी घर पर ही कुछ ऐसा ही कार्य शुरू करो। मेहनत का फल हमेशा मीठा होता है।

अब महेश गांव का ही भय्या नहीं रहा बल्कि जिला स्तर का अच्छा किसान हो गया था जिससे कि सरकारी कर्मचारी जैसे कृषि विकास अधिकारी और परियोजना अधिकारी, यहां तक जिला अधिकारी भी राय-मशिवरा लेते थे कि कैसे क्या किया जाये और किस प्रकार योजना को लागू किया जाये।

गांव में महेश के कारण अब बिजली भी आ गई थी और गांव तक पक्की सड़क बन चुकी थी। गांव में ही सामुदायिक केन्द्र, स्वास्थ्य उप-केन्द्र, डाक घर, एक बैंक और अन्य प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हो चुकी थीं। अब यह गांव एक आदर्श गांव बन चुका था। गांव के सभी लोग महेश भय्या के कृतज्ञ थे। गांव के महेश भय्या बाहर वालों के लिए महेश प्रसाद शर्मा या शर्मा जी हो चुके थे।

महेश शर्मा अब स्वयं भी बहुत प्रसन्न रहा करते थे। जब वे सामुदायिक केन्द्र में गांव के सभी किसानों के साथ धान, गेहूं, आलू या अच्छे किस्म के तिलहन के बारे में बात करते थे तो ऐसा लगता था कि वे किसी कृषि विश्वविद्यालय में कोई व्याख्यान दे रहे हों।

गांव में खेती के साथ ही साथ उन्होंने अच्छे किस्म के जानवर— गाय, बैल, भैंस और बकरी को भी पालने का काम शुरू करवाया जिससे बच्चों को दूध मिल सके और बच्चे स्वस्थ हों। सामुदायिक केन्द्र के साथ ही साथ एक व्यायामशाला की भी व्यवस्था हुई जिसमें आधुनिक किस्म के व्यायाम के आवश्यक यंत्रों की व्यवस्था कराई गई। रोज सुबह-सबेरे उठकर स्वयं महेश व्यायामशाला में जाता था। इस तरह गांव में हर तरह की सुख-सुविधा थी। अब वह गांव न होकर एक ऐसा शहर हो गया था जहां शहरों की सारी सुविधाएं थीं केवल वायुप्रदूषण को छोड़कर।

आज जिलाधीश महोदय के यहां से जो पत्र आया था, उसे पढ़कर वह मन ही मन गर्व से भर उठा था। उनके कार्यालय में लिपिक पद के लिए अयोग्य घोषित होने से लेकर आज उनके द्वारा अतिथि के रूप में सम्मानित होने तक की यह यात्रा महेश की मेहनत एवं भाग्य का ही फल था।

उसने पत्र को दुबारा पढ़ा और पत्नी की ओर देखा। उस समय उसके नेत्रों में आनन्द के आंसू थे।

बी-3ए30 बी,
जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

ग्रामीण ऊर्जा-वृक्षारोपण

गंगाशरण सैनी

गांवों में बढ़ती जनसंख्या के कारण इस शताब्दी के अंत तक ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन के लिए 19करोड़ 26 लाख मी० टन लकड़ी, 7 करोड़ मी० टन कृषि अवशिष्ट पदार्थ और 7 करोड़ मी० टन गोबर की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया है।

ग्रामीण भारत के कुल ईंधन की आवश्यकता की 68.5 प्रतिशत लकड़ी, 15.9 प्रतिशत तेल पदार्थ, 8.3 प्रतिशत गोबर और 0.6 प्रतिशत बिजली से प्राप्त होता है। इस प्रकार ग्रामीण भारत में ईंधन का प्रमुख स्रोत लकड़ी है। उपयोग में आने वाली लकड़ी का 78 प्रतिशत भाग वनों से मिलता है।

देश की कुल भूमि 32करोड़ 88 लाख हैक्टेयर है। इसमें से 17 करोड़ 25 लाख हैक्टेयर भूमि बेकार पड़ी है। ग्रामीण ऊर्जा की आपूर्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य है कि बंजर भूमियों का सुधार किया जाये और उनमें ऊर्जा आपूर्ति के लिए वृक्षारोपण कार्य युद्धस्तर पर प्रारम्भ किया जाए:

प्रमुख धारणायें

- आज भी अधिकांश ग्रामीण जनता भोजन पकाने के लिए लकड़ी का उपयोग करती हैं।
- ईंधन की लकड़ी के स्रोत के अभाव के कारण वे गोबर को जलाते हैं, जो कि जैविक खाद का प्रमुख है।
- ग्रामीण बल का लगभग 20 प्रतिशत भाग ईंधन की तलाश में घूमता है।
- ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की आय बहुत कम होती है अतः वे ईंधन वाली लकड़ी खरीदने में असमर्थ होते हैं। देश के वनों की अन्धाधुन्ध कटाई होने के कारण ईंधन के लिए लकड़ी एकत्रित करने की समस्या धीरे-धीरे और जटिल होती जा रही है।
- परिवार के सदस्यों में महिलाओं और बच्चों पर ईंधन वाली लकड़ियां एकत्रित करने की जिम्मेदारी है, जिसके कारण वे शिक्षा प्राप्त करने नहीं जा पाते हैं।
- देश में ईंधन के लिए लकड़ी की पूर्ति के वास्तविक समाधान से न केवल बिक्री योग्य लकड़ी उपलब्ध होगी, बल्कि बिना बिक्री योग्य लकड़ी श्रमिकों को मुफ्त में उपलब्ध होगी, यदि इस प्रकार की योजना बनायी जाये कि बड़े-बड़े लट्ठों का उत्पादन हो सकेगा तो उन्हें समीप के शहरों में बेचकर काफी धन कमाया जा सकता है।

संक्षेप में ऊर्जा वृक्षारोपण का प्रमुख उद्देश्य यह है कि पतली ईंधन वाली लकड़ी का उत्पादन किया जाए, ताकि उसे शहरों में बिकने के लिए न भेजा जा सके और वह गांवों में ही रहे। इससे दूसरा लाभ यह होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध गोबर का उपयोग "गोबर गैस प्लांट" के उपयोग में लाया जा सकेगा अथवा उसे गोबर के खाद के रूप में उपयोग में लाया जा सकेगा।

भारत ने खाद्यान्न के मामले में तो आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। किन्तु नयी वास्तविक हरित क्रान्ति तब होगी जब देश में ईंधन और चारे के लिए वृक्षारोपण किया जायेगा। अच्छी और सीमान्त मृदाओं पर खेती की जाती है। कम उर्वर मृदाओं का उपयोग वृक्षारोपण के लिए किया जा सकता है।

रेगिस्तानी मृदाओं का सुधार

इन मृदाओं में चिकनी मिट्टी का कोई आवरण नहीं होता है। इन मृदाओं में पोषक तत्वों की भारी कमी पाई जाती है। ये मृदाएं उचित जल निकास वाली होती हैं। ये मृदाएं थोड़े समय में तैयार होने वाली फसल के लिए अनुपयुक्त होती हैं, किन्तु अधिक गहरी जड़ वाली फसलों के लिए उपयुक्त होती हैं। मोटे रेत वाली मृदाओं में नमी संरक्षण बहुत कम होता है जबकि फाइन सिल्ट में काफी अच्छी नमी संरक्षण क्षमता पाई जाती है।

इन क्षेत्रों में ऐसे वृक्षों को उगाना चाहिए, जिन्हें बकरी या अन्य जंगली पशु क्षति न पहुँचा सकें। इन क्षेत्रों के लिए सफेदा, बबूल, प्रोस्पोपिस ज्यूलीफलोरी उपयुक्त वृक्ष हैं। सफेदा के वृक्षोरोपण के चारों ओर सू-बबूल की 5-7 पंक्तियां 30 से०मी० × 30 से०मी० की दूरी पर लगानी चाहिए, ताकि बकरियां भी प्रवेश न पा सकें।

उच्च घनत्व वृक्षारोपण में एक हैक्टेयर क्षेत्र में 25,000 पौधों की रोपाई करनी चाहिए। वृक्षों की आपसी दूरी 60 से० मी० से अधिक नहीं होनी चाहिए।

पौधों की आपसी दूरी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है अतः सफेदा और सुबबूल में पंक्तियों और पौधों की आपसी दूरी क्रमशः 45 से०मी० × 45 से०मी० और 60 से०मी० × 60 से०मी० रखनी चाहिए।

उच्च घनत्व वृक्षारोपण के औद्योगिक भागों का उल्लेख नीचे किया गया है।

- कृषि वानिकी को अपनाएं अर्थात् ईंधन देने वाले सदाबहार वृक्षों को फसल के साथ-साथ उगाया जाए, ताकि भूमि की एक इकाई से अधिक उत्पादन लिया जा सके। उसी भूमि पर एक साथ खाद्य, ईंधन, चारा, खाद रेशा या फल अधिकतम मात्रा में लिये जा सकते हैं।
- उचित किस्में और पौधे की प्रजातियों का चयन बढ़वार की आवश्यकताओं और उपज क्षमता के आधार पर करें। क्षेत्र की जलवायु मिट्टी, तापमान आदि को ध्यान में रखकर चयन करना लाभप्रद होगा।

लाभ:

उच्च घनत्व वृक्षारोपण परम्परागत कृषि वानिकी से अधिक लाभपद्र है जिसके लाभों का उल्लेख नीचे किया गया है।

- परम्परागत तकनीक से इसमें 3 से 10 गुना अधिक पादप-संख्या मिलती है।
- समीप रोपाई के ऊपर की ओर अधिक बढ़वार हो जाती है।
- समीप रोपाई करने से सूर्य की किरणें जमीन तक नहीं पहुंच पाती हैं, जिसके कारण वाष्पोत्सर्जन नहीं हो पाता है। जिससे उलपब्ध जल का समुचित उपयोग हो जाता है।
- चूंकि सूर्य की किरणें जमीन तक नहीं पहुंच पाती हैं इसलिए खरपतवार कम उगते हैं।
- प्रथम कटान का समय 5 वर्ष से घटकर 3 वर्ष हो जाता है।
- किनारे पर 60 से०मी० x 60 से०मी० की दूरी पर 5 से 10 पंक्तियां लगा सकते है, जो आमतौर पर बेकार पड़ा रहता है।
- वृक्षारोपण के कारण मुड़ते नहीं, बल्कि सीधे बढ़ते हैं। जिन्हें उपभोक्ता सुगमता से खरीद लेता है।
- समीप वृक्षारोपण के कारण उनकी मोटाई न्यूनतम रहती है। उपभोक्ता उन्हें खरीदना अधिक पंसद करते हैं।
- यदि अधिक वृक्ष उगाये गये हैं, तो उन्हें छिदरा किया जा सकता है, जबकि कृषि वानिकी में उगाये गये वृक्षों की संख्या को बनाया नहीं जा सकता है।

पथरीली मैदानों का विकास

- ऐसें पदार्थों का चयन करें, जो कठोर प्रवृत्ति के हों।
- पौधों की पोषक तंत्वों की आवश्यकता कम हों।
- दलहनी पौधों का चयन किया जाये क्योंकि इन्हें कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से नाइट्रोजन की।

पथरीले क्षेत्रों के लिए विशिष्ट प्राद्यौगिकी

चूंकि इन क्षेत्रों में पोषक तत्वों की कमी होती है इसलिए इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि पौधों के विकास के समय भूमि में पोषक तत्वों की कमी न हो।

30x30x30से०मी०आकार के गड्ढ़े खोदने चाहिए और पत्थरों को निकाल देना चाहिए जिसके लिए ड्रिलिंग मशीन का उपयोग किया जा सकता है। ड्रिल का व्यास 5 से०मी० से अधिक होना चाहिए। छिद्र 60 से०मी० से कम गहरा नहीं बनाना चाहिए।

चिकनी मिट्टी और जैविक खाद का मिश्रण बनाना चाहिए। साथ ही थोड़ी मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का मिश्रण और बी०एच०सी० 10% का थोड़ा सा चूर्ण भी मिला देना चाहिए। बोर-होल और गड्ढ़े को इस मिश्रण से भर देना चाहिए।

मानसून की प्रथम वर्षा के साथ पौधों की रोपाई कर देनी चाहिए। यदि रोपण के दस दिन बाद तक वर्षा न हो तो पानी देने की व्यवस्था करनी चाहिए। 3 महीने तक पूरी देखभाल करनी चाहिए।

इन क्षेत्रों में उगाने के लिए सफेदा, सूबबूल, नीम, साल आदि के वृक्ष उपयुक्त रहते हैं।

कम लवणीय मृदाओं का विकास

भारत में 70 लाख हैक्टेयर भूमि ऊसर की समस्या से प्रभावित है। प्रति वर्ष 20 हजार हैक्टेयर अच्छी भूमि ऊसर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। लवणीय मृदा में नमी धारण करने की क्षमता कम होती है। वर्षा का बहुमूल्य जल बेकार बह

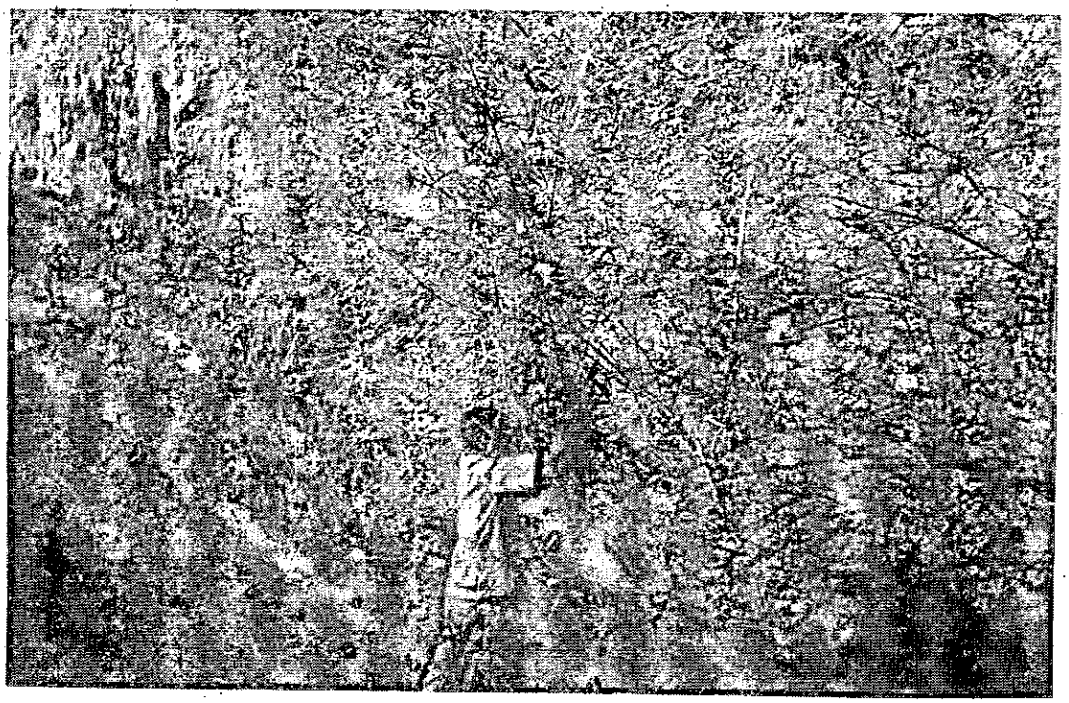

ऊर्जा वृक्षारोपण

जाता है। जिसके साथ पोषक तत्वों से परिपूर्ण ऊपरी सतह की मिट्टी भी बह जाती है। यह देखा गया है कि इन मृदाओं के निचले भाग में क्षार पाये जाते हैं। जहां एकत्रित हुआ जल पौधों के लिए हानिकारक सिद्ध तो होता ही है, साथ-साथ मच्छरों की संख्या में भी वृद्धि करते हैं। क्षारीय भूमि में किन्हीं छोटी-छोटी पट्टियों को छोड़कर पेड़ों का सदा अभाव-सा रहता है। अतः इस प्रकार की भूमि मानव, वन्य और वनस्पतिक जीवन के लिए पर्यावरण सम्बन्धी कठिनाइयों का निर्माण करती है।

क्षारीय भूमि में वृक्ष

अच्छी और उपजाऊ भूमि की बढ़ती हुई आवश्यकता और ईंधन की लकड़ी के निरन्तर ह्रास की गम्भीरता को देखते हुए, क्षारीय भूमि में वृक्षारोपण एक आशाजनक हल है। बंजर भूमियों में वृक्षारोपण सुन्दर पर्यावरण बनाने वाला और प्रदुषण रोकने में सहायक होगा। सामान्य और क्षारीय भूमि में वृक्षारोपण की योजनाएं तो अनेक बनी, परन्तु दुर्भाग्य से प्रायः सभी असफल रहीं। इसका मुख्य कारण समुचित वैज्ञानिक तकनीकी का अभाव रहा है।

वृक्षारोपण की वैज्ञानिक विधि

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल के वृक्षारोपण की वैज्ञानिक विधि का विकास किया है। जो इस प्रकार है।

यह विधि पेड़ों की कुछ किस्मों की वृद्धि व उन्हें जिन्दा रखने के लिए परीक्षित की जा चुकी है। क्षारीय भूमि में पेड़ लगाने की इस विधि को औगर होल विधि या बरमों द्वारा पेड़ लगाने की विधि कहते हैं। 120 से 180 से.मी. गहराई तक 15 से.मी. व्यास के हस्त-चालित या मशीन-चालित बरमें द्वारा गड्ढ़ा किया जाता है। पौधे लगाने से पहले ये गड्ढ़े अच्छी प्रकार की सुधरी हुई मिट्टी से दोबारा भर दिये जाते हैं। यह देखा गया है कि 180 से.मी. गहरे और 15 से.मी. व्यास के गड्ढ़े 2 या 3 कि.ग्रा. जिप्सम और 7 या 8 कि.ग्रा. गोबर की खाद क्षारीय मिट्टी में मिला दी जाये तो अधिक पौधे को जिन्दा रखने और उनकी बेहतर वृद्धि के लिए उतनी ही लाभदायक होगी जितनी कि 10-12 कि.ग्रा. जिप्सम, 24 कि.ग्रा. गोबर की खाद (60 से.मी.) गहरे और इतने व्यास के गड्ढ़े के लिए पारम्परिक विधि से पेड़ लगाने में प्रयोग होती थी। मजदूरों द्वारा गड्ढ़े बनाना कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु जहां अधिक संख्या में पेड़ लगाने हों वहां मशीन चालित औजारों को अपनाया जाना चाहिए।

इन क्षेत्रों के लिए वृक्ष की प्रजातियां चुनने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

* ये जल्दी बढ़ने वाली होनी चाहिए।

* लवणीय मृदाओं के मामले में ये लवण सहनशील होनी चाहिए।
* वृक्ष बहुउद्देशीय होने चाहिए।
* दलहनी प्रजातियों को वरीयता देनी चाहिए।
* कांटेदार वृक्षों को वरीयता देनी चाहिए।
* ईंधन अधिक कैलोरी मूल्य वाला होना चाहिए और बिना जहरीला धुंआ उत्पन्न करने वाला होना चाहिए।

उपरोक्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रोसोपिस जुयूलीफलोरा और अकेशिया टोरटोलिस दो प्रमुख प्रजातियां हैं, जिन्हें लवणीय मृदाओं में सुगमता से उगाया जा सकता है।

भारत में 15 करोड़ हैक्टेयर भूमि क्षरण की समस्या से प्रभावित है। इस प्रकार की भूमि में आस्ट्रेलियाई बबूल अर्थात् अकेसिया आरिकुलिफार्मिस एक उपयोगी वृक्ष है। इस वृक्ष से जहां ईंधन, टैनिन और कागज उद्योग के लिए लुगदी प्राप्त होती है, वहीं वह वृक्ष भूमि संरक्षण, वन प्रसारण, छाया और शोभा के लिए भी उपयोगी है।

पौधों की रोपाई

आस्ट्रेलियाई बबूल के नव अंकुरित पौधे जब 30-40 से.मी. ऊंचे हो जायें तब खेतों में 5x5 मीटर की दूरी पर 1x1x1 मीटर आकार के गड्ढे खोदकर उनमें मिट्टी और गोबर की खाद का मिश्रण भरकर पौधों की रोपाई करनी चाहिए। प्रत्येक पौधे के चारों ओर एक थाला बना देना चाहिए ताकि उसकी सिंचाई सुगमता से की जा सके। जिन क्षेत्रों में तेज हवाएं चलती हों उन क्षेत्रों में इसको नहीं उगाना चाहिए क्योंकि इसकी शाखाएं तेज हवा के कारण टूट जाती हैं।

सूखी बंजर भूमि में बांस उगाना चाहिए। यों तो बांस की अनेक किस्में हैं, किन्तु "डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्राईक्टस" नामक जाति सूखी बंजर भूमियों के लिए सर्वोत्तम पायी गयी है। बांस की यह जाति सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती हैं जहां पानी का जमाव या भराव न होता हो। राजस्थान में अरावली की ढलानों, विशेषकर दक्षिण-छोर की पहाड़ियां इसके लिए उपयुक्त क्षेत्र हैं। यह बांस लगभग 60 फीट ऊंचा बढ़ जाता है।

नयी वन नीति के अन्तर्गत पहाड़ों की ढलानों पर वृक्ष लगाने के कार्यक्रम वन विभाग राजस्थान द्वारा अपनाया गया है। ग्राम में वन लगाने से पंचायतों को भी अनेक सुविधाएं, रियायतें और आर्थिक सहायता मिलती है।

हाल ही में भारत सरकार ने आदिवासी क्षेत्रों में वृक्षारोपण के लिए 20 करोड़ रुपये की एक पंचवर्षीय योजना तैयार की है जिसमें 1986-87 में एक करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। इस योजना के अन्तर्गत आदिवासियों की अक्रमण या अनुउत्पादक भूमियों पर वृक्षारोपण किया जायेगा। जिन आदिवासियों को भूमि आंबटित की जायेगी, उन्हें पौधरोपण के लिए 7 वर्ष तक निर्वाह-भत्ता दिया जायेगा। जब पौधों की कटाई की जायेगी तब उसमें से वृक्षारोपण की लागत और निर्वाह भत्ता जो उन्हें पहले दिया गया था निकाल कर शेष भुगतान भू-स्वामी को दे दिया जायेगा।

गत 16-18 अक्तूबर को नई दिल्ली में निरर्थक मृदाओं के विकास पर एक संगोष्ठी हुई, जिसमें निरर्थक मृदाओं की समस्याओं के समाधान पर विशेषज्ञों द्वारा विचार-विमर्श किया गया। इस संगोष्ठी में कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये। जिनमें से प्रमुख निर्णय इस प्रकार हैं:

* देश में वृक्षरोपण बढ़ाने के लिए नयी तकनीक जैसे पादप-प्रजनन और टीशूकल्चर का उपयोग किया जाना चाहिए।
* भविष्य में व्यवस्थापन, उद्योगों और सड़कों का जाल बिछाने के लिए निरर्थक मृदाओं का उपयोग करना चाहिए।
* निरर्थक भूमि सुधार का कार्य पहले ब्लॉक स्तर पर होना चाहिए। उसके उपरान्त उसका कार्य क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है।
* गणक आधारीय आंकड़ा बैंक (कम्प्यूटर वेस्ड डाटा बैंक) की स्थापना की जानी चाहिए, ताकि उससे विभिन्न प्रकार की निरर्थक मृदाओं की पहचान और मानचित्र-निर्माण का कार्य सुगमता से हो सके।
* वृक्षारोपण के कार्यों में ऊर्जा वृक्षारोपण को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए ताकि ईमारती लकड़ी को न जलाया जाये और जिससे पर्यावरणीय प्रदूषण कम हो सके।

ऊर्जा वृक्षारोपण से न केवल ऊर्जा मिलेगी साथ ही गोबर की बचत भी होगी जिसे खाद के रूप में उपयोग में लाया जा सकेगा। ग्रामीण ऊर्जा समस्या से छुटकारा मिलेगा अन्ततः देश के पर्यावरण में भी आशाजनक सुधार होगा।

संयुक्त सम्पादक – फसल संदेश, 1023 टाइप, 4 एन.एच. फरीदाबाद-121001. (हरियाणा)

टीकमगढ़ जिले के कृषि क्षेत्र पर एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम

डा० हेमचंद जैन

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम को वर्तमान रूप से समस्त देश के 2,300 चुनिंदा विकास खण्डों में वर्ष 1978-79 में एक अद्वितीय गरीबी-उन्मूलन मुहिम के रूप में आरंभ किया गया। मध्य प्रदेश के सभी 459 विकास खण्डों में 2 अक्तूबर 1980 से कार्यक्रम को लागू किया गया। उद्देश्य यह था कि लक्ष्य समूह में पहचाने गये परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अतिरेक अवसरों को निर्मित करना। प्रदेश में छठी पंचवर्षीय योजना अवधि तक 13.77 लाख परिवारों को फायदा पहुंचाने का लक्ष्य था, परन्तु 14.21 लाख ग्रामीण परिवारों को फायदा प्रदान करने में सफलता मिली। अनुमान है कि प्रदेश में गरीबी की रेखा से नीचे 50.54 लाख ग्रामीण परिवारों की संख्या है। छठी योजना के अंत में 14.21 लाख गांव के परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के बाद, शेष 36.33 लाख ग्रामीण गरीब परिवारों को सातवीं पंचवर्षीय योजना और बाद की योजनाओं में गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना है। गरीबी के उच्च विस्तार को ध्यान में रखकर, इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्रदेश के (प्रत्येक विकास खण्ड के 5 हजार परिवारों पर 80 लाख रुपये के हिसाब से कुल पांच वर्ष के लिए 370 करोड़ रुपये के प्रावधान के आधार पर) 22.95 लाख ग्रामीण परिवारों को सहायता प्रदान करके गरीबी की रेखा से ऊपर लाना है। यद्यपि कार्यक्रम के द्वारा ग्रामीण परिवारों को गरीबी से ऊपर उठाने का संकल्प तथा कोष का आबंटन, जो प्रस्तावित किया, वह अत्यधिक महत्वाकांक्षी दिखाई देता है, परन्तु उन ग्रामीण अदोषी हितग्रहियों को, जो गरीबी की रेखा से ऊपर उठने में सक्षम नहीं हो पाए सहायता की द्वितीय मात्रा प्रदान करने का प्रावधान, गरीबी की रेखा के नीचे नये पहचाने गए ग्रामीण गरीब परिवारों को वित्तीय सहायता का उच्च मानदण्ड का निर्धारण और गरीबी रेखा के नीचे के ग्रामीण गरीब परिवारों की आय की उच्च सीमा 6,400 रुपयों को पहचान आधार बनाना इत्यादि व्यूह रचना सातवीं पंचवर्षीय योजना में लक्ष्य समूह हितग्राही उन्मुख गरीबी निदान कार्यक्रम के अमल की गति को बढ़ाने के आवश्यक आधार-समायोजन है, जिससे गरीबी के आकार में भारी कमी होने की अनुकूल स्थिति पैदा होती है।

मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य

हमारे देश में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक प्रमुख हितग्राही उन्मुख कार्यक्रम है। गरीबी रेखा के ऊपर आय बढ़ाने पर इसके प्रभाव का अनवरत् आधार पर मूल्यांकन किया जाना जरूरी है, जिससे उजागर हुई कमियों को दूर करके, कार्यक्रम को अधिक प्रभावी बनाया जा सके। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर, मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ जिले में चुनिन्दा हितग्राहियों पर कार्यक्रम के प्रभाव को आंकने हेतु यह अध्ययन किया गया।

रीति विधान— टीकमगढ़ जिले के बल्देवगढ़ विकास खण्ड को सा उद्देश्य इस अध्ययन के लिए चयनित किया गया क्योंकि सम्पूर्ण जिले में इस विकास खण्ड की कार्यक्रम उपलब्धियां सबसे उत्तम प्रतिवेदित कर गई थीं। विकास खण्डों में सबसे बढ़िया उपलब्धि-निष्पादित चार गांवों का चयन भी समान आधार को ध्यान में रखकर किया गया। चयनित गांवों के हितग्राहियों की कुल संख्या में से 50 प्रतिशत को सादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर गहन जानकारी प्राप्त करने हेतु सर्वेक्षण में शामिल किया गया। इस अध्ययन में उन्हीं प्रत्यार्थियों का चयन किया गया, जो कार्यक्रम के अन्तर्गत गरीबी रेखा सीमा के नीचे सहायता की पात्रता हेतु मान्य किये गये थे।

इस अध्ययन हेतु कृषि-सम्बद्ध सिंचाई, लघु पैमाने के धंधे और स्वरोजगार गतिविधियों से संबंधित क्रमशः 21, 12, 13, और 7 हितग्राहियों का समावेश अंतिम रूप में किया गया, जिससे दो समय बिन्दुओं-ऋण पूर्व वर्ष 1980-81 और ऋण बाद वर्ष 1983-84 में परिवर्तनों को आंका जा सके। चयनित उत्तरदाताओं से संगत जानकारी प्राप्त करने हेतु सर्वेक्षण पद्धति का अनुसरण किया गया। इस हेतु पूर्व में जांच की गई प्रश्नावली-सारणी का उपयोग किया गया।

अध्ययन के निष्कर्षों का विवरण

(अ) चुनिंदा हितग्राहियों की सामान्य विशेषताएं :– सर्वेक्षण-आंकड़ों के विश्लेषण से यह उदघाटित हुआ कि चुनिंदा हितग्राही परिवारों का औसत आकार 6.68 व्यक्ति था। पुरुष-महिला अनुपात 56:44 का था। चुने हुए हितग्राहियों का शैक्षणिक स्तर मुख्यतः प्राथमिक शिक्षा तक था। चुने हुए हितग्राहियों में से 40 प्रतिशत कृषि कर्मी थे और शेष अकृषि गतिविधियों में कार्यरत थे। इन चयनित हितग्राहियों का औसत भूजोत आकार 1.99 हैक्टेयर था तथा सिंचित क्षेत्र औसत जोत में से 0.86 हैक्टेयर था।

(ब) कृषि सम्बद्ध गतिविधियों पर प्रभाव :– चयनित विकास खण्ड में समाज के कमजोर वर्ग की आय का महत्वपूर्ण स्रोत बकरी पालन था। बकरी पालन कार्यक्रम से सहायता के बाद चुनिंदा परिवारों को औसत कुल प्रतिफल रुपया 1624.23 प्राप्त हुआ। बकरी पालन के रख-रखाव पर प्रति परिवार औसत लागत 678.80 रुपया अनुमानित की गई। इस प्रकार प्रति परिवार शुद्ध प्रतिफल 945.53 रुपया आंकी गई। प्रति परिवार प्रतिफल-लागत अनुपात 1:2.39 इस कार्यक्रम का अनुमानित किया गया।

(स) लघु सिंचाई कार्यक्रम :– इस मूल्यांकन अध्ययन के आंकड़ों से यह स्पष्ट हुआ कि चुनिंदा परिवारों का जो इस प्रकार के कार्यक्रम के अन्तर्गत हितग्राही थे, ऋण प्राप्ति के बाद औसत सिंचित क्षेत्र में 44 प्रतिशत वृद्धि हुई। कार्यक्रम के अन्तर्गत लघु सिंचाई सुविधाओं में विस्तार के कारण फसल चक्र में भी परिवर्तन हुए। ऋण पूर्व के वर्ष में ज्वार खरीफ की प्रमुख फसल थी, ऋण बाद के वर्ष में खरीफ की प्रमुख फसल धान हो गई। रबी मौसम की फसलों में हेरफेर नहीं हुआ परन्तु "जो" फसल के अन्तर्गत क्षेत्र में कमी होकर गेहूँ और चना के रकबे में बढ़ोत्तरी हो गई। ग्रीष्म में चयनित हितग्राहियों के द्वारा कुछ भी कृषि उत्पादन नहीं किया जाता था, परन्तु ऋण प्राप्ति के बाद सिंचाई सुविधा उपलब्धता के कारण शाक-सब्जियों को उगाने लगे। इस कार्यक्रम के चुनिन्दा हितग्राहियों की सहायता के बाद सस्यगहनता 184 प्रतिशत से बढ़कर 197 प्रतिशत हो गई।

नमूने के बतौर कृषि परिवारों पर लाभ-हानि के आधार पर लघु सिंचाई कार्यक्रम के प्रभाव को जाँचने हेतु सभी फसलों का प्रति प्रक्षेत्र लागत प्रतिफल का अनुमान लगाया गया। ऋण पूर्व की अवधि में चुनिंदा हितग्राहियों को फसल उत्पादन में सकल प्रतिफल, लागत और शुद्ध प्रतिफल क्रमशः रुपया 2157.93, 1165.00 और 992.93 था। यह बढ़कर कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋण सहायता के बाद क्रमशः रुपया 3920.40, 1815.00 और 2105.40 हो गया। ऋण पूर्व का लागत प्रतिफल अनुपात 1:1.8 था, यह ऋण बाद में वर्ष में 1:2.16 हो गया। इस अनुकूल परिवर्तन का कारण अधिक सिंचाई सुविधाओं के कारण फसल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होना था। धान, गेहूँ और चना का प्रति हैक्टेयर उत्पादन क्रमशः 400 कि०, 450कि०और 375 कि० बिना ऋण स्थिति में था, यह ऋण के रूप में सहायता के पश्चात बढ़कर क्रमशः 700 कि०, 775 कि० और 475 कि० प्रति हैक्टेयर हो गया। समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता के बाद चयनित परिवारों की फसल लागत में वृद्धि होकर भी, हितग्राहियों के फसल उत्पादन के स्तर में प्रभावी असर लक्षित हुआ और फसलों की औसत उपज में वृद्धि का परिणाम लघु सिंचाई कार्यक्रम के कारण हासिल हो सका।

(द) स्वरोजगार कार्यक्रमों का प्रभाव:– स्थानीय कारीगरों को "ट्राइसेम योजना" के अन्तर्गत स्वरोजगार के अच्छे अवसरों को प्रदान करके, उनके कौशल का विकास होकर आय के स्रोतों में विभिन्नता उत्पन्न होती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत चयनित हितग्राहियों को "साईकिल-शाप" हेतु प्रदान की गई सहायता के फलस्वरूप सबसे अधिक सुलाभ प्राप्त हुए। सहायता प्रदान के पहले चयनित परिवारों की समस्त स्रोतों से वार्षिक कुल आय 2,068 रुपया थी, यह बढ़कर बाद में सहायता प्राप्ति के वर्ष में 4,785 रुपया हो गई। इस प्रकार औसत परिवार की वार्षिक शुद्ध आय रुपया 1,550 से बढ़कर 3,820 रुपया हो जाना इसका संकेत करती है कि स्वरोजगार गतिविधि में सहायता के कारण हितग्राही गरीबी की रेखा से ऊपर उठने में सक्षम हो सके। इसका प्रमुख कारण चयनित परिवारों के हितग्राहियों को लाभप्रद रोजगार वर्ष के अधिकांश दिनों में मुहैया होना रहा।

(ई) लघु उद्योग संबंधी कार्यक्रमः– इस गतिविधि के अन्तर्गत बढ़ईगिरी हितग्राहियों का चयन किया गया। सहायता के बाद चयनित हितग्राहियों को वार्षिक कुल आय 3440 रुपया बढ़ईगिरी से, खेती से 715 रुपया और अन्य स्रोतों से 225 रुपया अनुमानित की गई।

निष्कर्षः – इस कार्यक्रम के अन्तर्गत चुनिंदा हितग्राहियों के आंकड़ों की व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि स्वरोजगार एवं लघु उद्योगों में संलग्न गरीबों को सहायता देने के बाद से वे आय की गरीबी सीमा के ऊपर उठने में सक्षम हो सके। बकरी पालन हितग्राहियों की सहायता के पश्चात् आय में उठाव इतना नहीं हो सका जिससे वे गरीबी रेखा से ऊपर आ सकें। लघु सिंचाई कार्यक्रम की सहायता के कारण यद्यपि चुनिंदा हितग्राहियों की आय में दुगनी से अधिक वृद्धि हुई परन्तु गरीबी की रेखा से ऊपर उठने में सक्षमता हासिल नहीं कर सके। अतएव इस अध्ययन के अन्तर्गत चुनिंदा हितग्राहियों में से केवल 37.73 प्रतिशत ही गरीबी रेखा से ऊपर उठ सके। बकरी पालन और लघु सिंचाई कार्यक्रमों की सहायता से हितग्राही अपनी आय में अपेक्षित संवृद्धि करके गरीबी रेखा से ऊपर पहुंचने में सफल नहीं हो सके। बकरी पालन गतिविधि पर आश्रित हितग्राहियों को कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता से प्रभावी सुलाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब या तो उनकी इकाईयों को विकास-स्तर पर पोषित किया जाए या अन्य व्यवसायों के साथ इस गतिविधि की सहायता की जाए। लघु सिंचाई कार्यक्रम में हितग्राहियों को सहायता का प्रतिफल पूर्ण रूप से तभी प्राप्त हो सकता है जब हितग्राहियों की "भूजोत" आर्थिक हो। सीमान्त कृषक यदि सहकारिता के आधार पर कृषि को अपनायें तभी उनकी जोत आर्थिक होकर, कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता से, गरीबी रेखा के ऊपर उठने में सफली भूत हो सकते हैं। कार्यक्रम के प्रभावी नतीजे हेतु गतिविधियों का चयन और साथ में संबंधित गतिविधि को एक साथ सहायता मुहैया करना भी जरूरी है।

वैज्ञानिक (कृषि अर्थशास्त्र)
कृषि अर्थशास्त्र विभाग
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
जबलपुर - 482004 (म० प्र०)

हम किसान हैं

अहद प्रकाश

हम मेहनत के दीप जलायें, धरती पर हरियाली लायें
डगर डगर पर वृक्ष लगायें, गांव गांव खुशहाली लायें
हम किसान हैं हम किसान हैं
देश की अपने आन बान हैं
चट्टानों पर फूल खिलायें, नदियाँ रोकें बांध बनायें
बड़े बहादुर बड़े जियाले बाधाओं से न घबरायें
हम किसान हैं हम किसान हैं
देश की अपने आन बान हैं
हल बख्खर से यारी अपनी, धरती मां है प्यारी अपनी
काम करेंगे काम करेंगे, जब तक सांस हमारी अपनी
हम किसान हैं हम किसान हैं
देश की अपने आन बान हैं
कड़ी धूप हो या बारिश हो हमको केवल काम है प्यारा
मेहनत अपनी दीन धर्म है मेहनत पर ईमान हमारा
हम किसान हैं हम किसान हैं
देश की अपने आन बान हैं।

भारतीय खाद्य निगम
विधान सभा परिसर, भोपाल-3

मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के बढ़ते चरण

डा० विनोद गुप्ता

अफ्रीका के पश्चात सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक आदिवासी भारत में निवास करते हैं। भारत के आदिवासियों के अधिकांश भाग को मध्य प्रदेश अपनी गोद में समाए हुए है। भारत का हर पाँचवा आदिवासी मध्य प्रदेश में है जबकि मध्य प्रदेश का हर चौथा व्यक्ति आदिवासी है। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में ये आदिवासी बहुत पिछड़े हुए हैं। इन आदिवासियों को शिक्षित कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना निश्चित ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य है किंतु मध्य प्रदेश के योजनागत विकास के अंतर्गत इस चुनौती को स्वीकार करते हुए राज्य शासन इन वर्गों के सर्वांगीण उत्थान हेतु शिक्षा के क्षेत्र में पूर्ण संकल्प शक्ति और क्षमता के साथ जुटा है। राज्य शासन का समग्र प्रयास यह है कि यह वर्ग शासन से आवश्यक संरक्षण और सहायता प्राप्त कर अपने पैरों पर खड़े होकर राष्ट्रीय जीवनधारा में समाहित हो।

मध्य प्रदेश में आदिवासियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 23.5 प्रतिशत है। प्रदेश में कोई 33 आदिवासी प्रजातियां हैं। प्रदेश के 45 जिलों में से 14 जिले आदिवासी बहुल हैं। झाबुआ, बस्तर, मण्डला, सरगुजा, सीधी, शहगेल, रायगढ़, खरगोन, धार, सिवनी, छिंदवाड़ा, बिलासपुर, रायपुर तथा बैतूल जिलों में आदिवासी अधिक संख्या में रहते हैं। झाबूआ तथा बस्तर जिलों में तो वहां कि जनसंख्या का प्रतिशत दो तिहाई से भी अधिक है। झाबूआ में तो 85 प्रतिशत आदिवासी हैं।

मध्य प्रदेश में आदिवासियों की विशाल संख्या होने के बावजूद शिक्षा के क्षेत्र में उनकी स्थिति संतोषप्रद नहीं रही है और वे अन्धकार में डूब रहे हैं। शिक्षा के अभाव में इन आदिवासियों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उन्नति भी समुचित रूप से नहीं हो पाई है। परिणामस्वरूप वे राष्ट्रीय मुख्य धारा से अपने आप को मिला नहीं पाए हैं। इनका अपना एक अलग संसार है। यहां के आदिवासी मुख्यतः कृषि या वनोपज के माध्यम से जीवन यापन करते हैं। अशिक्षित होने के कारण पग-पग पर उन्हें ठगा जाता है और उनके परिश्रम का उचित मूल्य भी नहीं मिल पाता है। आदिवासियों का सदियों से शोषण होता आया है। इसका सबसे बड़ा कारण उनका अशिक्षित होना है। अज्ञानता के कारण वे अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। पहाड़ी और वन क्षेत्रों में रहने के कारण इनमें आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान नहीं हो पाया है। आर्थिक स्थिति तो आज भी दयनीय है। अतः आदिवासियों की तरक्की करने का एक ही रास्ता है उन्हें शिक्षित किया जाए। और यह प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रीय नीति में आदिवासियों के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयत्न करने की बात कही गई हैं। राष्ट्रीय नीति के अनुरूप ही मध्य प्रदेश की संवेदनशील सरकार ने आदिवासियों के विकास हेतु विशेष योजनाएं क्रियान्वित करके उनके उत्थान हेतु मार्ग प्रशस्त किया है।

आदिवासियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं जिससे क्रमशः शैक्षाणिक विकास होता गया। आदिवासी बहुलता वाले क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना पर विशेष ध्यान दिया गया। मध्य प्रदेश की स्थापना के पश्चात् करीब 20 वर्ष तक आदिवासियों के कल्याण एवं संरक्षण के मामले में सामान्यतः केवल आदिमजाति कल्याण विभाग को ही उत्तरदायी माना जाता था। वस्तुतः तब यही एक विभाग सीधे तौर पर इन वर्गों के शैक्षणिक उत्थान के लिए काम कर रहा था। पांचवीं पंचवर्षीय योजना काल में आदिवासी उपयोजना लागू होने से इस वर्ग के शैक्षणिक विकास में एक नया मोड़ आया। इस वर्ग के विकास की मुख्य आवश्यकता इनकी शैक्षणिक उन्नति है।

आदिवासियों में शिक्षा के प्रसार के लिए प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक तथा महाविद्यालय स्तर की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था की जा रही है। वर्तमान में मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में लगभग 16 हजार प्राथमिक शालाएं हैं। इन प्राथमिक शालाओं में लगभग 9 लाख छात्र-छात्राएं अध्ययनरत हैं। माध्यमिक विद्यालयों की संख्या

वर्तमान में 3 हजार है जिनमें लगभग ढाई लाख छात्र अध्ययन कर रहें हैं। इसी प्रकार, वर्तमान में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 550 है जिनमें लगभग डेढ़ लाख विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में 75 शासकीय महाविद्यालय भी कार्य कर रहे हैं।

वर्तमान में प्रदेश के आदिवासी शिक्षार्थियों के लिए 256 आश्रमशाला, 1532 मैट्रिक छात्रावास, 68 पोस्ट मैट्रिक छात्रावास, 14 औद्योगिक प्रशिक्षण और 5 बुनियादी प्रशिक्षण संस्थान हैं। इसके अलावा 8 आदर्श उच्चतर माध्यमिक शाला, 5 कन्या शिक्षा परिसर और गुरुकुल विद्यालय भी आदिवासियों को शिक्षित करने में अपनी भूमिका निभा रहे हैं।

आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में सभी 250 से अधिक जनसंख्या वाले ग्रामों में प्राथमिक शाला की सुविधा उपलब्ध करा दी गई हैनिरंतर कोशिशों के फलस्वरूप आदिवासियों के साक्षरता प्रतिशत में संतोषजनक बढ़ोत्तरी हुई है। 1960-61 की अवधि में आदिवासियों में साक्षरता की वृद्धि 2.5 प्रतिशत थी जो वर्ष 1981 में बढ़कर 3.06 हो गई। इसी अनुरूप माध्यमिक शाला वर्ग की साक्षरता वृद्धि 1961-71 की अवधि में बढ़कर 2.42 प्रतिशत हो गई। 1981 की जनगणना के प्रावधान के अनुसार साक्षरता की वृद्धि जिन जिलों में 30 प्रतिशत से अधिक हुई है वे आदिवासी प्रधान जिले हैं तथा बस्तर जिला इनमें प्रथम है।

प्रदेश के सुदूर अंचलों में जहां छोटी-छोटी आबादी वाले गांव बसते हैं वहां पर प्राथमिक स्कूलों का खोलना संभव नहीं रहता। ऐसे गांवों की बालिकाएं विशेष तौर पर शिक्षा सुविधाओं से वंचित रह जाती हैं, उनके लिए आश्रम पद्धति के माध्यम से शिक्षा देना एक मात्र रास्ता है। सन् 1986-87 से 100 सीट्स बाल आश्रम खोलने की व्यवस्था की गई है।

आदिवासी उपयोजना क्षेत्र के 14 ऐसे विकास खंड हैं जहां पर आदिवासियों पर शिक्षा का प्रतिशत 5 से कम है। 88 विकास खंड ऐसे हैं जहां पर महिला साक्षरता कुल साक्षरता से कम है। 14 विकास क्षेत्रों में साक्षरता में वृद्धि किए जाने के प्रयोजन से इन विकास खंडों में बालक-बालिकाओं को कक्षा 5 वीं उतीर्ण करने पर 250 रुपये प्रोत्साहन राशि दी जाएगी। इसी प्रकार 88 विकास खंडों की बालिकाओं को कक्षा 5 वीं उत्तीर्ण करने पर 200 रुपये की धनराशि दी जाएगी।

आदिवासियों को अपने बच्चों को पढ़ाने हेतु आर्थिक परेशानी न हो इस हेतु आदिवासी विद्यार्थियों को शासन छात्रवृत्तियां प्रदान करता है। राज्य छात्रवृत्ति इस समुदाय के कक्षा 6 से 10 वीं के छात्रों को दी जाती है। विशेष छात्रवृत्ति 5 प्रतिशत से कम साक्षरता वाली जनजातियों के बच्चों को दी जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्राविण्य छात्रवृत्ति उन आदिवासी छात्रों को दी जाती है जिन्होंने माध्यमिक स्तर की परीक्षा प्रथम प्रयास में उत्तीर्ण की हो। राज्य शासन ने 1986-87 से कक्षा पांचवी की प्रावीण्य सूची के स्थान प्राप्त करने वाले आदिवासी छात्रों को दी। कक्षा 7 से 8 वीं तक प्रावीण्य छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था की है। मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति उन आदिवासी छात्रों को प्रदान की जाती है जो मैट्रिक के बाद आगे पढ़ाई जारी रखते हैं। यह छात्रवृत्ति छात्रावासी और गैर छात्रावासी छात्रों को अलग-अलग दर पर स्वीकृत की जाती है। ऐसे आदिवासी छात्र जो सामान्य छात्रावासों में रह कर महाविद्यालयों में पढ़ते हैं और आर्थिक कठिनाई का अनुभव करते हैं, स्टेट बैंक उन्हें ऋण छात्रवृत्ति प्रदान करता है।

आदिवासी छात्र-छात्राओं का चहुंमुखी विकास हो इसके लिए खेल में रुचि रखने वाले छात्र-छात्राओं हेतु खेल परिसर बनाए गए हैं। कुल मिलाकर 222 खेल परिसर इस प्रकार चलाए जा रहे हैं जिसमें 200 माध्यमिक स्तर पर तथा 22 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कार्यरत हैं।

आदिवासियों में प्रौढ़ शिक्षा के विस्तार पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आदिवासी प्रौढ़ शिक्षा परियोजनाएं आयोजित की गई हैं। प्रत्येक परियोजना के अंतर्गत 100 केन्द्रों को रखा गया है। प्रत्येक केन्द्र 30 प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का काम करता है। आदिवासी बच्चों में "पढ़ो और कमाओ" योजना भी लागू की गई है जिसके अच्छे परिणाम निकले हैं।

आदिवासियों के उत्थान हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अनेक योजनाएं बनाई जाती हैं। लेकिन इसके बावजूद भी इनकी स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाता। अनेक सुविधाओं और छूट देने के बावजूद भी आदिवासी शिक्षा के प्रति आकर्षित क्यों नहीं है? आदिवासी शिक्षा के प्रति रुचि रखें, इसके लिए आवश्यक है कि किताबी शिक्षा की बजाए उनका पाठ्यक्रम रुचिकर हो और आदिवासी स्कूलों में ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति करने का प्रयास करना चाहिए जो आदिवासियों की भाषा को समझते हों और अपनी बात उन्हें समझा सकते हों।

दीपक निवास, 156, महात्मा गांधी मार्ग,
बड़वानी (मध्य प्रदेश)
पिन - 451551

बंजर भूमि खेती योग्य बनायें

हरिश्चन्द्र सिंह

जो जमीन खेती के लायक न हो, बेकार और किसी काम के अनुपयुक्त हो, ऐसी जमीन को बंजर कहते हैं। बंजर भूमि भी अनेक तरह की होती है। पहली प्रकार की जमीन ऐसी होती है, जिसमें घास तक नहीं उगती। बरसात का पानी तुरन्त बह जाता है। ऐसी भूमि को "ऊसर" कहते हैं। दूसरी प्रकार की जमीन कंकरीली-पथरीली होती है। उसमें घास उगती है पर खेती के लायक नहीं होती। ऐसी जमीन में नीम, बबूल और बेर के पेड़ लगाये जा सकते हैं। तीसरी प्रकार की जमीन नदी के किनारे की होती है, जो बाढ़ और पानी के तेज बहाव के कारण समतल न रहकर, ऊंची-नीची, नाला और गड्ढों के रूप में बदल जाती है। चौथे प्रकार की जमीन ऐसी है, जो धूल और रेत भरी आंधी के बार-बार आने से खराब हो गयी है। इसे ही हम रेगिस्तान का विस्तार कहते हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र और नहरों के पास की जमीन है, जो हमेशा पानी से भरी रहती है। यह सब जमीन बंजर और पड़त के ही अंश माने जाते हैं।

हमारे देश में कुल लगभग 32 करोड़ 40 लाख हैक्टेयर भूमि है। इस में से लगभग आधी जमीन बड़ी विकृत दशा में है। इसकी उत्पादन क्षमता बहुत कम है। कुल खेती लायक जमीन 14 करोड़ 30 लाख हैक्टेयर है। इस में से पिछले कुछ वर्षों में 4 करोड़ हैक्टेयर जमीन खराब हो गयी है। 7 करोड़ 50 लाख हैक्टेयर वन की जमीन है, जिसमें से 3 करोड़ हैक्टेयर जमीन पर वन नहीं है या उस पर पेड़-पौधे उगते नहीं हैं। 1 करोड़ हैक्टेयर जमीन पर झाड़ियां हैं। 7 करोड़ 50 लाख हैक्टेयर जमीन पानी के तेज बहाव, नदियों के बाढ़, बांध, जलाशय, बड़े-बड़े कारखानों के बनाने से खराब हो गयी है। धूल और रेतभरी आंधी आने से 75 लाख हैक्टेयर जमीन खेती के योग्य नहीं रह गयी है। उस पर खेती करना बालू में से तेल निकालने की तरह है।

वर्तमान में, हमारे देश में 47 लाख हैक्टेयर जमीन में बाढ़, आंधी, रेगिस्तान के विस्तार, पानी के खारापन आदि कारणों से उसका क्षरण बहुत तेजी से हो रहा है। यदि हम भूक्षरण पर अंकुश नहीं लगायेंगे, तो खेती लायक जमीन जो आज 48 प्रतिशत है, घट कर 41.5 प्रतिशत हो जायेगी। इसके विपरीत, बंजर और बेकार भूमि जो इस समय 15 प्रतिशत है, बढ़कर 21.5 प्रतिशत हो जायेगी। हमारी आबादी जो आज 80 करोड़ है, सन् 2000 तक बढ़कर, 100 करोड़ हो जायेगी। इस प्रकार आबादी बढ़ने से जमीन पर दबाव बढ़ेगा। अन्न की समस्या विकराल रूप धारण कर लेगी। इस समस्या से निपटने के लिए हमे बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए जी-जान से पहल करनी होगी।

नेहरूजी की सलाह

स्वर्गीय प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने दिल्ली में अखिल भारतीय कृषि प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए कहा था, "बेकार और बंजर भूमि हमारे कृषि वैज्ञानिकों के लिए एक बड़ी चुनौती है। उसमें हरियाली उगाना भारत की आर्थिक क्रान्ति की कुंजी है। यह हमारे कृषि क्षेत्र में प्रगति के लिए किए गए संकल्प की निशानी है। इस निशानी को साकार कर हम ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते हैं, जहां भूख की समस्या का, गरीबी के अभिशाप का और दुःख दर्द के कलंक का समापन हो जाये। इस निशानी में हमारे निर्माण का आदर्श छिपा हुआ है।"

मानदंड में परिवर्तन

कृषि को हमने सदियों पूर्व अपने प्रधान व्यवसाय के रूप में स्वीकार कर, इसकी महत्ता में आस्था और विश्वास व्यक्त किया। उन दिनों, यह व्यवसाय हमारे लिए कामधेनु के समान था। हम इस व्यवसाय में प्रयत्नशील रहकर अपनी हर प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति कर लेते थे। समय ने करवट ली। हमारा जीवन दृष्टिकोण बदल गया। हमने कृषि

की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखना शुरू किया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि हम सकल साधन मंडित होकर भी भूख की पीड़ा के जबरदस्त शिकार बन गए। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के सारे आदर्श बिखरे पड़े हैं। हम प्रतिदिन नई-नई योजनाओं के प्रकाश में प्रगति के पथ का संधान करना चाहते हैं। लेकिन हमारी मूल समस्या, खाद्य समस्या ही है और जिससे हम अपनी आर्थिक स्थिति को और सुदृढ़ कर सकते हैं। इसके लिए, व्यापक पैमाने पर कृषि के क्षेत्र में सुधार लाना अति आवश्यक कार्य है। बेकार और बंजर भूमि में हरियाली उगाने की उपयोगिता और महता इसी संदर्भ में वांछनीय मानी जाती है।

कुछ उपाय

ऊसर भूमि:- हमारे देश में करीब 15 लाख हैक्टेयर ऊसर की जमीन है। इस जमीन में खेती नहीं की जाती है। अब हमारे पास ऐसी तकनीक और बीज उपलब्ध हो गए हैं, जिससे ऊसर भूमि को चहेती खेती में परिवर्तित कर सकते हैं।

ऊसर भूमि को मेंड डालकर छोटी-छोटी क्यारियां बना ली जाती हैं। जब बरसात का पानी उसमें रुकने लगता है, तो कुछ वर्ष बाद उसमें अपने आप तबदीली आ जाती है। आप उसमें "जिप्सम" का प्रयोग करें। इससे वह जमीन एक साल में खेती लायक हो जायेगी। ऐसा करने में थोड़ा पैसा जरूर खर्च होगा। यदि आप की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है और आप बिल्कुल पैसे खर्च नहीं करना चाहते तो उसमें "बेहया" नामक झाड़ दस-दस फीट की दूरी पर लगा दें। यह झाड़ पड़त और बेकार जमीन में बहुत अच्छी तरह से बढ़ता है। इसे पानी भी नहीं देना पड़ेता है। सदा फूल-पत्तों से हरा-भरा रहता है। इसकी लकड़ियां खाना बनाने के काम में आती हैं। आप दो वर्ष बाद उसे खेत में से काटकर केवल खेत के मेड़ के चारों ओर लगा दें। बीच में ज्वार, बाजरा की फसल बहुत अच्छी होगी।

2. **वृक्षारोपण:-** इस युग में वृक्षारोपण का महत्त्व बहुत बड़ा हो गया है। पिछले कुछ वर्षों से वृक्ष काटने से जंगल और पहाड़ नंगे हो गए हैं। वनों का लाभ तो सर्वविदित है। अतः बेकार पड़ी हुई भूमि चाहे जंगल में हो या पहाड़ों पर, सड़क के किनारे, रेल पटरी के आस-पास या नहरों के पास इन सभी प्रकार की भूमि पर वृक्षारोपण कर बेकार पड़ी हुई भूमि का समुचित उपयोग किया जा सकता है।

3. **सिंचाई की सुविधा:-** पानी के अभाव में लाखों हैक्टेयर भूमि बेकार पड़ी रहती है। करोड़ों हैक्टेयर भूमि पर बरसात के पानी से केवल एक फसल होती है। आस-पास के इलाके में सर्वे करा कर जांच करनी चाहिए कि किन-किन स्थानों पर छोटे-छोटे बांध बन जाने से पानी का स्तर ऊंचा उठ जायेगा, जिससे सिंचाई आसानी से हो सकेगी।

सरकार भी देश में नहरों का जाल बिछा रही है। कुआं खोदने के लिए भी राज्य सरकारें बहुत-सी रियायतें दे रही हैं। थोड़ा-सा प्रयास कर ट्यूबवेल या पम्प सैट लगवा कर सिंचाई का प्रबन्ध किया जा सकता है। यदि सिंचाई सुविधा हो जाती है तो बंजर और पड़त भूमि लहलहाने में देर न लगेगी।

4. चरागाह:- प्रत्येक गांव के बाहर सैंकड़ों हैक्टेयर भूमि चरागाह के नाम से बेकार ही पड़ी रहती है। ऐसी पड़त भूमि में पशुओं के लिए उत्तम किस्म की घास उगाई जा सकती है। ऐसी घास को काट कर पशुओं को खिलाया जाता है। उसमें पशुओं को चरने के लिये नहीं छोड़ना चाहिए। घास काट कर उसकी सिंचाई तुरन्त कर दें तो दूसरी बार भी घास तैयार हो जाती है। इस तरह हर महीने घास की एक फसल काट सकते हैं।

5. अन्य उपयोग:- जिस भूमि का खेती, पशुपालन और बागवानी के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है, उसकी जांच कर उस जमीन का उपयोग ग्रामीण उद्योग के काम में लाया जा सकता है। जैसे मिट्टी से ईंट बनाना, कंकर से चूना बनाना, सड़क के निर्माण में उपयोग करना अथवा मकान बनाने के काम में लाना शामिल हैं।

बंजर भूमि के विकास के क्षेत्र में भारत सरकार के बढ़ते हुए कदम को देखकर यह कल्पना सहज ही की जा सकती है कि वह दिन दूर नहीं, जब भारत में सम्पूर्ण मात्रा में बंजर भूमि का विकास होगा और इसका भरपूर उपयोग किया जा सकेगा। एक कवि के शब्दों में:-

बेकार भूमि के विकास में,
हे भारतीयों लगे रहो।
कर्म ऐसे किया करो कि,
इस दुनिया में अमर रहो।

104/3643 तिलक नगर
चेम्बूर (बम्बई) 400089

कितने भरे हैं गुण नन्हें से लौंग में

विनय कुमार

लौंग हमारे भोजन में मसाले के रूप में उपयोग की जाने वाली नन्हीं-सी कली है। इसका आदि स्थान मोल्यू टापू माना जाता है। यह कर्पूरादि वर्ग तथा जम्बावादि कुल का 30 से 40फीट तक ऊंचा हो जाने वाला वृक्ष है जो जंजीबार,पेम्बा, एम्बोयना, मेडागास्कर, मलाया, जावा, सुमात्रा, सेले बीस, मारिशस, बोर्नियो, ब्राजिल, गियाना और भारत में होता है।

रासायनिक विश्लेषण

नन्हें से लौंग में कई तरह के रासायनिक गुण हैं। जिनका वर्गीकरण इस तरह किया गया है :–

आर्द्रता 25.2प्रतिशत, प्रोटीन 5.2 प्रतिशत, वसा 8.9 प्रतिशत, रेशा 9.5 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 46.00 प्रतिशत, खनिज द्रव्य 5.2 प्रतिशत, कैल्शियम 0.740 प्रतिशत। इनके अतिरिक्त 100 प्रतिशत फासफोरस, लौह 4.9 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम होते हैं। आयोडीन 50.7 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम रहता है। विटामिनों में कैरोटिन 253 मि.ग्रा., थायमिन 0.08 मि.ग्रा. निकोटिन एसिड 1.51 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम और टेनिन 13 प्रतिशत होता है।

औषधीय प्रयोग

हमारे जन जीवन में कई बिमारियों में इस गुणकारी मसाले का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है। कुछ अनुभवी वैद्यों के तथा दादी अम्माओं के अनुभूत प्रयोग इस प्रकार हैं। संकट के समय इन्हें आप आजमा कर लाभ उठा सकते हैं–

- बादी के कारण पानी वात वेदना में लौंग की छाल को गरम जल में पीस कर शरीर के दर्द वाले अंगों पर मलना चाहिए।
- कण्ठ रोगों में लौंग को सैक कर मुंह में रखकर चूसना चाहिए।
- ज्वर में लौंग और चिरायत दोनों समान मात्रा में लेकर पानी में पीस कर पिलाना चाहिए। ज्वर के बाद की निर्बलता से भी यह राहत दिलाता है।
- हृदय की जलन मिटाने के लिए लौंग को ठण्डे पानी में पीस कर मिश्री का चूर्ण मिलाकर दो-तीन खुराक लें।
- स्नयविक मस्तक शूल से मुक्ति के लिए लौंग गर्म जल में पीस कर ललाट और कनपटियों पर धीरे-धीरे मलना चाहिए।
- गर्भावस्था में वमन तथा जी घबराने की शिकायत हो तो लौंग का चूर्ण, मिश्री तथा अनार का रस बराबर मिलाकर चटाइए।
- संधिवात में लौंग का तेल मलना चाहिए। यह तेल दांतों का दर्द दूर करने में भी सक्षम है। दर्द वाले हिस्से पर तेल भीगा रुई का फोहा लगाइए। कोचर में रखने से दर्द मिट जाता है।
- कुक्कुर खांसी में लौंग को आग पर भूनकर शहद मिलाकर चाटने से फायदा होता है।
- लौंग और हल्दी को पीस कर नासूर बह रहा हो उस पर लगाना चाहिए। इसे लगातार कुछ दिन आजमाएं।
- अधिक भोजन के कारण आफरा होने पर लौंग को पानी में उबाल कर थोड़ा-सा सोडा बाईकार्ब मिलाकर पिलाएं।
- कब्ज मिटाने के लिए लौंग तथा छोटी पीपल दोनों को कूट कर थोड़ी-सी मात्रा प्रातः सायं शहद के साथ चटाएं।
- अजीर्ण से बचाव के लिए लौंग और हरड़ का क्वाथ बनाकर उसमें सैंधा नमक मिलाकर गरम पानी से लेना चाहिए।
- पुराने जुकाम से बचने के लिए 7-8 लौंग को पानी में उबाल कर थोड़े से शहद के साथ पिलाना चाहिए। इसका गरम-गरम वफारा नाक के दोनों ही नथूनों से लेना चाहिए।
- हैजे की लपेट में आ जाएं तो लौंग का काढ़ा बनाकर ठण्डा करके दिन में तीन-चार बार पिलाना चाहिए।
- दाद, खाज, खुजली में इसके तेल की मालिश करें।

है न नन्हीं-सी लौंग की कली बहुत ही गुणकारी।

बी-116, विजयपथ,

तिलक नगर, जयपुर-302004

कुरुक्षेत्र, मार्च 1988

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश के ग्राम बलदीयन में एक महिला चाय एंव मिष्ठान की दुकान चलाते हुये।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लाभान्वित एक साइकिल मकैनिक

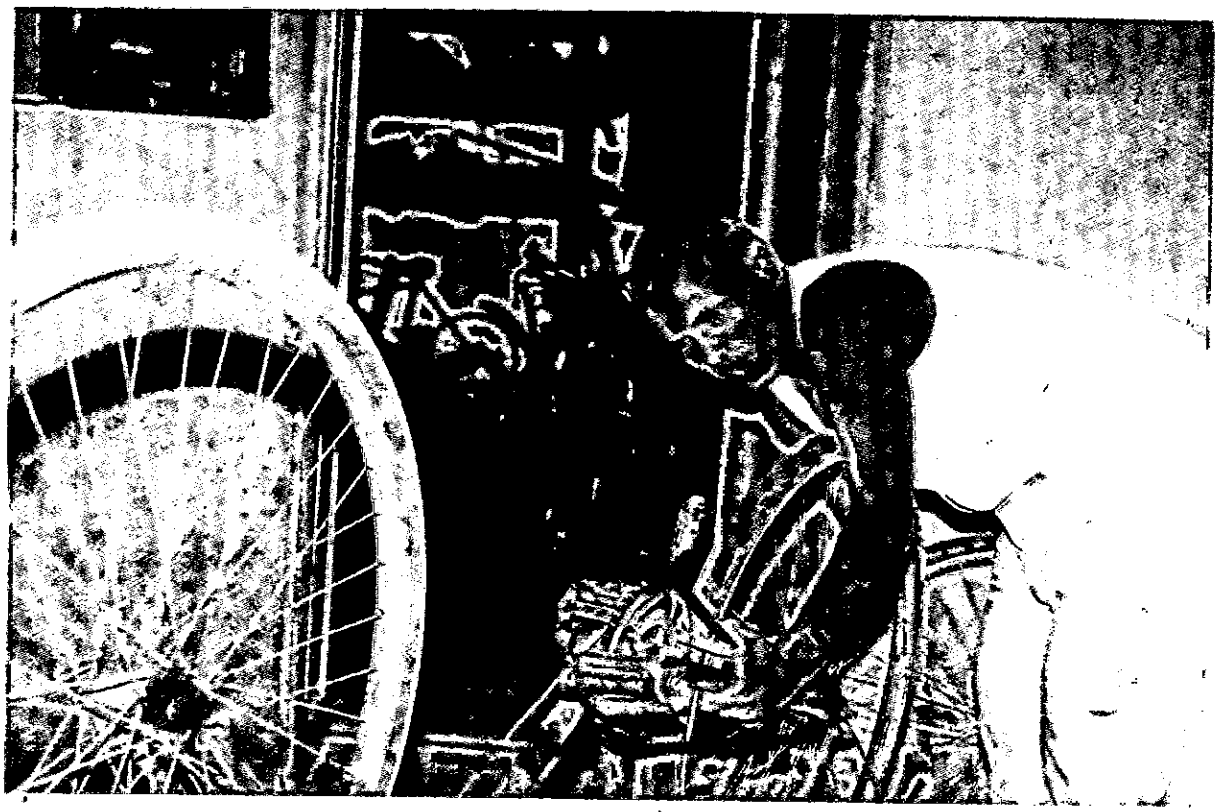

डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ.. नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55
दिल्ली डाक

P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi
Delhi Postal

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अंतर्गत रेलवे लाईन के दोनों और हरे-भरे वृक्ष

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित